A REAL PLEASURE OF WARM BATH ...

at unbelievable low cost.
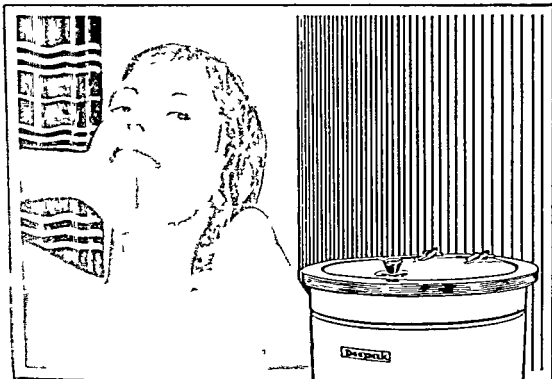
Opp G P O M I Road JAIPUR - 302001

Tel Shop 75611 Res 75612

मणिभद्र

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर
का
वार्षिक मुख-पत्र

अंक : सत्ताईसवां

वि. सम्वत् : २०४२

□

सम्पादक मण्डल :

नरेन्द्रकुमार लुणावत
राकेशकुमार मोहनोत
मनोहरमल लुणावत
सुरेशकुमार मेहता
विमलकान्त देसाई
नरेन्द्रकुमार कोचर
कु. सरोज कोचर

□

कार्यालय :

श्री आत्मानन्द सभा भवन

घी वालों का रास्ता, जयपुर - ३०२००३

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

संघ की स्थायी प्रवृत्तिया

- श्री सुमतिनाथ जिन मन्दिर सम्वत् १७८४ मे प्रतिस्थापित २५७ वर्षीय सर्वाधिक प्राचीन मन्दिर जिसमे आठ सौ वर्ष पुरानी विभिन्न प्राचीन प्रतिमाओ सहित ३१ पाषाण प्रतिमायें, पच परमेष्ठी के चरण व नवपदजी का पाषाण पट्ट, अधिष्ठायक देव परम प्रभावक श्री मणिभद्रजी, श्री गौतम स्वामी, आचार्य विजयहीरसूरीश्वरजी आ श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी म० की पाषाण प्रतिमायें शासन देवी (महाकाली देवी) एव अम्बिका देवी की अति प्राचीन एव भव्य प्रतिमाओ सहित स्वण मण्डित सम्मेद शिखर, शत्रुन्जय, नन्दीश्वर द्वीप, गिरनार, अष्टापद महातीर्थ एव वीशस्थानक के विशाल एव अद्भुत दर्शनीय पट्ट।

- भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेडा तीर्थ जयपुर–टोंक रोड पर जयपुर से ३० कि दूर एव शिवदासपुरा से २ कि पर बांई ओर स्थित बरखेडा ग्राम मे यह प्राचीन मन्दिर स्थित है। इसका इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना बताया जाता है। प्रतिवर्ष श्रीसघ के तत्त्वावधान मे फाल्गुन माह मे आयोजित वार्षिकोत्सव मे प्रात कालीन सेवा पूजा, दिन मे प्रभु पूजन एव सायकाल को साधर्मी वात्सल्य का आयोजन श्रीसघ की ओर से सम्पन्न होता है। जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और दर्शनीय है। तीर्थ स्थल सुरम्य सरोवर के किनारे स्थित होने से रमणीक तो है ही आगन्तुको के लिए शात वातावरण एव आल्हादपूर्ण स्थिति का सृजन करता है।

- भगवान श्री शांतिनाथ स्वामी का मन्दिर चन्दलाई यह मन्दिर भी शिवदासपुरा से २ कि० दाहिनी ओर चन्दलाई कस्बे मे स्थित है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्वत् १७०७ मे होना ज्ञातव्य है। लगभग साठ हजार की लागत से मन्दिर जी का जीर्णोद्धार व मूल गम्भारे का नव निर्माण करवाकर मिगसर वदी ५ स० २०३६ को आ श्रीमद्विजय मनोहरसूरीश्वरजी म सा की निश्रा मे पुन प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई है।

- भगवान श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कॉलोनी, जयपुर इस मदिर की स्थापना डॉ भागचन्द छाजेड द्वारा सन् १९५७ मे की गई और सन् १९७५ मे यह मन्दिर श्रीसघ को सुपुर्द किया गया। अगस्त माह के प्रथम सप्ताह मे इसका वार्षिकोत्सव सम्पन्न होता है। यहां पर श्री सीमन्धर स्वामी के शिखरबन्द भव्य मन्दिर का निर्माण का कार्य १९८२ मे प्रारम्भ किया गया था और कार्य द्रुतगति से जारी है, दान दाताओं का आर्थिक सहयोग प्रार्थनीय है।

- श्री जैन कला चित्र दीर्घा भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थ स्थानो मे प्रतिष्ठित जिनेश्वर

भगवानों एवं जिनालयो के भव्य एवं अलौकिक चित्र, जैन संस्कृति के स्रोत विभिन्न संकलनों का अपूर्व संकलन ।

- **भगवान महावीर का जीवन परिचय भित्ति चित्रों में :** स्वर्ण सहित विभिन्न रंगों में कलाकार की अनूठी कला का भव्य प्रदर्शन । अल्प पठन एवं दर्शन मात्र से भगवान के जीवन में घटित घटनाओं की पूर्ण जानकारी सहित अत्यन्त कलात्मक भित्ति चित्रों के दर्शन का अलभ्य अवसर ।

- **श्री आत्मानन्द सभा भवन :** विशाल उपाश्रय एवं आराधना स्थल जिसमे शासन प्रभावक विभिन्न आचार्य भगवन्तों, मुनिवृन्दो एवं समाजसेवकों के चित्रों का अद्वितीय संग्रह एवं आराधना का शांत एवं मनोरम स्थल ।

- **श्री वर्धमान आयम्बिल शाला :** परम पूज्य उपाध्याय श्री धर्मसागरजी महाराज की सद्-प्रेरणा से सम्वत् २०१२ में स्थापित आयम्बिल शाला में प्रतिदिन आयम्बिल की समुचित व्यवस्था के साथ उष्ण जल की सदैव पृथक से व्यवस्था ।

  आयम्बिल शाला के हाल का पुनर्निर्माण कराया गया है । स्वयं अथवा परिजनों में से किसी का भी फोटो लगाने का ११११) रु० नकरा । इससे कम योगदानकर्त्ताओं के नाम पट्ट पर अंकित किये जाते हैं । स्मृति को स्थायी रखने सहित आयम्बिलशाला में योगदान का दो तरफा लाभ ।

- **श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला :** चरित्र निर्माण एवं धार्मिक शिक्षा की सायंकालीन व्यवस्था जिसमें सुयोग्य प्रशिक्षिका द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

- **श्री जैन श्वे० मित्र मण्डल पुस्तकालय एवं वाचनालय :** श्रीमान् रतनचन्दजी कोचर के सद् प्रयत्नो से सन् १९३० मे स्थापित पुस्तकालय । दैनिक, साप्ताहिक, मासिक जैन-अजैन समाचार पत्रों सहित धार्मिक पुस्तकों का विशाल संग्रह ।

- **श्री सुमति ज्ञान भण्डार :** पं० भगवानदास जी जैन द्वारा प्रदत्त एवं दुर्लभ अन्य ग्रन्थों का संग्रहालय ।

- **उद्योगशाला :** महिलाओ के लिए सिलाई बुनाई प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था ।

- **साधर्मी भक्ति :** साधर्मी भाई बहिनों को गुप्त रूप से सहायता पहुंचाने का सुलभ साधन । जरूरतमन्द साधर्मी भाई-बहिनो के भरण-पोषण में सहायक बनने, जीविकोपार्जन में सहयोग देने, शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता देने और लेने का अद्वितीय संगम । साधर्मी भक्ति की कामना रखने वाले भाई-बहिनों के लिए इस संस्था के माध्यम से गुप्त दान का अपूर्व क्षेत्र ।

- **मणिभद्र :** इस संस्था की निःशुल्क वार्षिक स्मारिका जिसमें आचार्य भगवंतों, साधु-साध्वियों, विद्वानों, विचारकों के सारगर्भित एवं पठनीय लेखों सहित संस्था की वार्षिक विभिन्न गतिविधियों का विवरण, संस्था का वार्षिक आय-व्यय का विवरण, कलात्मक चित्रों सहित विभिन्न प्रकार की हमेशा संग्रहणीय सामग्री का प्रकाशन ।

गीत

□ डॉ० शोमनाथ पाठक
एम ए (हिन्दी सस्कृत)
पी-एच डी साहित्य रत्न

मरिगभद्र का सत्ताइसवाँ, अक अभ्युदय की आशा ।
महावीर का मत्र प्रचारक, विश्व शाति की परिभाषा ।।

आत्मानद सभा का सम्बल, तपागच्छ सघो की थाती,
जैन जगत् का जीवनदाता, मन वाणी जिसका गुण गाती ।
आध्यात्मिक उत्थान समर्पित, नैतिकता का नित्य निखार,
स्नेह-समन्वय, सुख समष्टिमय, प्रेम, परस्पर, युग उपकार ।।

इस विशिष्ट साहित्यिक कृति से, मिट जाती सपूर्ण निराशा ।
मरिगभद्र का सत्ताइसवाँ, अक अभ्युदय की आशा ।।

वार्षिक विशेषाक बनकर यह, जैन जगत् का है आलोक,
भरत भूमि ही नही, किंतु, गर्वित इस पर पूरा भूलोक ।
आगम, अग, उपाग आदि का, इसमे तत्त्व समाहित है,
दर्शन की दिव्यता समाहित, इससे जन-जन का हित है ।।

मनोकामना पूरा करने वाले मन की अभिलाषा ।
मरिगभद्र का सत्ताइसवा, अक अभ्युदय की आशा ।

महावीर का जन्म वाचना दिवस, अक को अर्पित है,
सभी सत सतियाँ जी को यह अनुपम कृति समर्पित है ।
सपादक मडल की महिमा, महावीर अमृत वाणी,
'मरिगभद्र' को अपना करके, सुखी बनेगा हर प्राणी ।

कौन जौहरी इस हीरे को, इतना सुघर तराशा,
मरिगभद्र का सत्ताइसवाँ, अक अभ्युदय की आशा ।

कटारिया तीर्थ मण्डन श्री महावीर स्वामी (कच्छ-गुज

-: मंगल-गीत :-

अब सौंप दिया इस जीवन को,
भगवान ! तुम्हारे चरणों में;
मैं हूँ शरणागत प्रभु ! तेरा,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।१।।

मेरा निश्चय बस एक यही,
मैं तुम चरणों का पुजारी बनूं;
अर्पण कर दूं दुनिया भर का,
सब प्यार तुम्हारे चरणों में ।।२।।

जो जग में रहूं ऐसे रहूं,
ज्यूं जल में कमल का फूल रहे;
हैं मन - वच - काय - हृदय अर्पण
भगवान ! तुम्हारे चरणों में ।।३।।

जहाँ तक संसार में भ्रमण करूं,
तुझ चरणों में जीवन को धरूं;
तुम स्वामी मैं सेवक तेरा,
धरूं ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।४।।

मैं निर्भय हूं तुझ चरणों में,
आनंद - मंगल है जीवन में;
आतम - अनुभव की संपत्ति,
मिल गई है प्रभु ! तुझ भक्ति में ।।५।।

मेरी इच्छा बस एक प्रभु !
एक वार तुझे मिल जाऊँ मैं;
इस सेवक की एक रग-रग का,
रहे तार तुम्हारे हाथों में ।।६।।

अनुक्रमणिका

——

सम्पादकीय

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ जयपुर के वार्षिक मुख पत्र "मणिभद्र" का यह २७वा अक महावीर स्वामी के जन्म वाचना दिवस के दिन आपकी सेवा मे प्रस्तुत करते हुये हमे अति हर्ष की अनुभूति हो रही है।

इस वर्ष जनवरी १९८५ मे सघ की नव निर्वाचित महासमिति ने कार्य भार सम्भाला है। श्री सघ के प्रबल पुण्योदय से इस वर्ष शान्त मूर्ति अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब ठाणा ९ तथा साध्वी श्री किरणलता श्री जी महाराज साहब ठाणा ५ का चातुर्मास सम्पन्न हो रहा है। जयपुर श्री सघ को इस वर्ष साधु साध्वी दोनो का अपूर्व लाभ मिला है जो सघ के लिए बडे ही गौरव की बात है। पूज्य आचार्य भगवत की निश्रा में तप-जप सहित विभिन्न आराधनाए सम्पन्न हो रही हैं। सघ मे अत्यन्त उल्लास एव आनन्द का वातावरण व्याप्त है।

जनता कॉलोनी, जयपुर मे शिखर युक्त नव जिनालय का निर्माण कार्य शीघ्र ही द्रुतगति से प्रारम्भ होने वाला है जिसमे श्री सीमन्धर स्वामी भगवान् विराजमान होंगे। ऐसी आशा है कि उक्त जिनालय की अजन शलाका सहित प्रतिष्ठा आगामी मगसर मास मे पूज्य आचार्य भगवत श्री कलापूर्ण सूरीश्वर जी म सा की पावन निश्रा मे सम्पन्न होगी।

इस २७वें अक को भी पिछले अको के अनुरूप ही सुन्दर पठनीय एव सग्रहणीय बनाने का प्रयास किया गया है। साथ ही इसमे श्री कटारिया तीर्थ (कच्छ) के मूलनायक भगवान् श्री महावीर स्वामी का चित्र प्रकाशित किया गया है जो निश्चय ही मनमोहक, आकर्षक एव दर्शनीय है।

इस अक को सुपठनीय एव ज्ञानवर्धक बनाने मे आचार्य भगवतो, साधु-साध्वियो एव विद्वान् लेखको ने अपने लेख एव सेवायें देकर जो सहयोग हमे प्रदान किया है, उसके लिये सम्पादक मडल सभी के प्रति हार्दिक आभार एव कृतज्ञता प्रगट करता है। लेखों मे प्रकाशित विचार लेखको के व्यक्तिगत हैं, सम्पादक मण्डल उसके लिये जिम्मेदार नही है। साथ ही सम्पादक मण्डल इस अक के प्रकाशन मे विज्ञापनदाताओ एव सामग्री सग्रह मे सहयोगकर्ताओं के प्रति भी अपना धन्यवाद एव हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

—सम्पादक मडल

□□
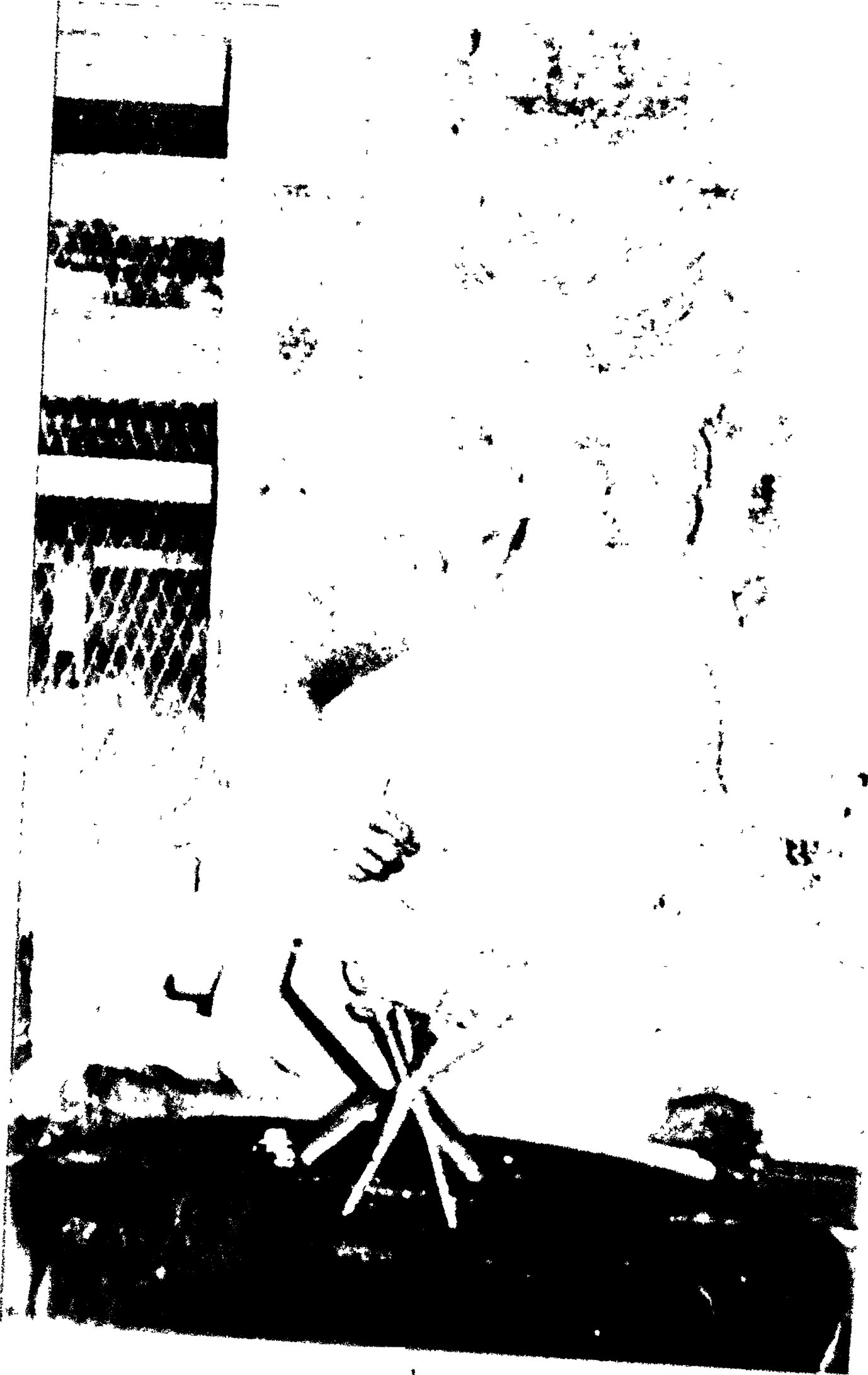
भक्ति योग से परमात्मा की ओर

□ आचार्य देव श्री विजयकलापूर्ण
सूरीश्वरजी म.

भौतिक पदार्थों के प्रति प्रेम आसक्ति है।
देव-गुरु-धर्म के प्रति भक्ति है।

जो व्यक्ति भौतिक पदार्थों में, इन्द्रियों के विषयों मे लीन रहता है, वह भोगी कहलाता है। लेकिन जो व्यक्ति भगवान् के वीतराग स्वरूप में लीन रहता है, उसे योगी कहते हैं।

अपने शरीर में आत्म बुद्धि—अहंभाव रखना ही संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण है। हमें मोह है, प्रेम है अपने नाम का, अपने रूप का, अपने गुण का यही हमारे दुःख की जड़ है।

अपने नाम के मोह को समाप्त करने के लिए परमात्मा के नाम का, अपने रूप के मोह को नष्ट करने के लिए परमात्मा के रूप का, उनकी सौम्य प्रशांत वीतरागमय मुद्रायुक्त प्रतिमा का तथा अपने गुणों के अहंकार को समाप्त करने के लिए श्री जिनेश्वर परमात्मा के गुणों का अहर्निश स्मरण, दर्शन, पूजन तथा चिंतन करना जरूरी है।

मोह अनादि का आत्मसात् है। उसको नष्ट करने के लिये परमात्मा का नाम, उनकी मूर्ति और उनके गुणों का चिंतन ही एक मात्र आलंबन है। प्रभु नाम का स्मरण-जाप करने से हमारी रसना पवित्र होती है। प्रभुमूर्ति के दर्शन-पूजन से हमारी आंखें निर्विकार बनती हैं; हमारी काया धन्य होती है। इस तरह जिनेश्वर परमात्मा के गुणों के चिंतन से हमारा चित्त निर्मल व स्थिर बनता है।

परमात्मा के नाम, रूप (आकार-मूर्ति) गुण के आलंबन के अलावा स्वयं को निर्वि[illegible] निर्मल बनाने का कोई अन्य उपाय नहीं है।

देहदृष्टि को देवदृष्टि मे परिवर्तित करने हमे वीतराग श्री जिनेश्वर भगवान् की उपा[illegible] को जीवन में प्रधानता देनी होगी। वीतराग उपासना से ही विषय वासना, कषाय न[illegible] सकते हैं, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

पौद्गलिक पदार्थों के साथ प्रेम करने जीव का अभ्यास अनादि से है। उसको रूपान्त[illegible] करने के लिये प्रभु-भक्ति मे जुट जाना जरूरी प्रभु-भक्ति से चित्त की शुद्धि होती है। प्रभु प्र[illegible] की पूजा करने से मन को अपार प्रसन्नता [illegible] है। एक अनिर्वचनीय आत्मिक आनन्द का [illegible]भव होता है।

बिन्दु का अस्तित्व कितना? एक ही क्ष[illegible] वह विलीन हो जाता है लेकिन वही बिन्दु सिन्धु में समाहित हो जाता है तो अमर बन [illegible] है। कर्माधीन हमारी आत्मा बिन्दु जैसी है। [illegible] के वशीभूत होकर उसे बार-बार जन्म-मरण [illegible] पड़ते हैं। मनुष्य जन्म में ही कर्मक्षय करने का दुर्लभ अवसर हमें मिलता है। यदि हम म[illegible] भव का कर्मक्षय के लिये सदुपयोग करें त[illegible] अपनी आत्मा को सिन्धु रूप परमात्मा में मि[illegible] तो अमर बन जाये अर्थात् सिद्ध बन जावें।

श्री जिनेश्वर परमात्मा का नाम लेने से, उनकी मूर्ति (स्वरूप) के दर्शन-वदन-पूजन करने से हमारे हृदय मन्दिर मे साक्षात् प्रभु विराजते हैं, यह अनुभूति होती है। जब हमारे हृदय मन्दिर मे प्रभु विराजमान होते हैं, हमे उनके स्वरूप का भान होता है तब सभी कषाय नष्ट हो जाते हैं। क्रोध भाग जाता है, मान नष्ट हो जाता है, माया पलायन कर जाती है और लोभ तो बेचारा रहता ही नही। कामवासना मरण पा जाती है। इस तरह विषय व कषायो के हटते ही आत्मा के शुद्ध स्वरूप के दर्शन हमे होते है। यह ठीक वैसे ही होता है जैसे बादलो के हटते ही सूर्य के दर्शन होते हैं।

वैसे तो श्री जिनेश्वर परमात्मा अनामी हैं, निराकार हैं, अरूपी हैं। उनका दिव्य स्वरूप हमे बाह्य चक्षु से दिखाई नही पडता है लेकिन वे परम दयालु है, प्रेम युक्त है, ज्ञान-चिन्मय हैं, अचिन्त्य शक्ति के स्वामी हैं। इसलिये वे अनामी होने पर भी नाम से, निराकार होते हुए भी आकार से, और चिन्मय गुण स्वरूप से भक्त के हृदय मन्दिर मे विवेक चक्षु से, अन्त चक्षु से दिखाई देते हैं। श्री जिनेश्वर परमात्मा हमे विवेक चक्षु के माध्यम से हमारे आत्मस्वरूप का हमे भान कराते है। हमारे प्रभु इतने अधिक कृपालु है कि वे हमे भी परमात्मा बना देते है, चाहिये हममे कुछ भक्ति-भावना व पूर्ण आत्म समर्पण।

हर एक आत्मा मे परमात्मा का स्वरूप समाहित है। उस परमात्म स्वरूप का प्रकटीकरण तब शुरु होता है जब हम उनकी शरण मे जाते हैं, उनकी भक्ति मे लीन होते है, हमे ससार मे प्रभु के अलावा और कुछ नही दिखता है। भक्त जब भक्ति करते करते तन्मय हो जाता है तभी उसे आत्मा मे जिनेश्वर भगवान् के स्वरूप का भान होता है।

वीतराग परमात्मा की उपासना-भक्ति करने का मुख्य साधन है उनका नाम स्मरण, उनकी वीतरागमय सौम्य मूर्ति का दर्शन वदन पूजन और उनके गुणो का अहर्निश चिंतन। हम अपनी आत्मा के मूल स्वरूप को, उसके अनामी, निराकार अरूपी, चिदानन्द-मय स्वरूप को तभी पा सकते हैं जब हम परमात्मा की भक्ति मे, उनके स्वरूप के दर्शन, वदन, पूजन मे पूर्ण समर्पण भाव से समर्पित हो जावें। देह भाव को विस्मृत करके आत्म स्वरूप मे लीन हो जावें।

आत्म-स्वरूप को प्राप्त करने का सबसे सरल मार्ग है-भक्ति-योग। भक्ति योग के लिये प्रमुख साधन है श्री जिनेश्वर परमात्मा का नाम स्मरण तथा उनकी प्रतिमा पूजन, उनके दर्शन, वदन आदि। प्रभु की प्रतिमा (मूर्ति) उनका मूर्त स्वरूप है। उस मूर्त स्वरूप का दर्शन, पूजन, स्तवन और ध्यान करने से ही हमे अमूर्त परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। अमूर्त परमात्मा के दर्शन मिलन से हम हमारे आत्मा के अमूर्त स्वरूप को पा सकते हैं। बिना आलबन के कुछ भी प्राप्त नही किया जा सकता है। प्रभु प्रतिमा मुख्य आलबन है। इसके सहारे आत्मा को परमात्मा स्वरूप मे प्रकट किया जा सकता है।

सच तो यह है कि प्रभुमूर्ति मे जो प्रभु को देखता है वही प्रभु बनता है। जो अपनी जड बुद्धि से प्रभु मूर्ति को जड पत्थर मानता है वह स्वय जड पत्थर के समान ही रहता है।

युक्ति, तर्क आत्मानुभव तथा ज्ञानियो का कथन जो कि शास्त्र रूप मे हमारे पास है, इन सबका एक ही निर्देश है कि श्री जिनेश्वरदेव की उपासना के लिये उनके स्वरूप (मूर्ति) की पूजा नित्य प्रति करना आवश्यक ही नही अनिवार्य है। पहले प्रभु से प्रीति, फिर प्रभु की भक्ति, फिर प्रभु-आज्ञा का विशिष्ट पालन व प्रभु का ध्यान यही योग साधना का क्रम है। ससार सागर से तिरने का, पार उतरने का, यही उपाय है। मोह व मिथ्यात्व के गहन अधकार मे डूबे हुए मनुष्य

(जीव) को प्रभु प्रतिमा का दर्शन सूर्य की एक हल्की सी किरण रूप है। यदि वह इस किरण का भी आलम्बन ले ले तो फिर धीरे-धीरे पूर्ण सूर्य के प्रकाश को पाकर क्रमशः आठों कर्म का क्षय करके सिद्ध स्वरूप को पा सकता है।

जब तक प्रभु प्रतिमा की पूज्यता और उपकारिता के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न नहीं होगी, तब तक हम अज्ञान रूपी अंधेरे में भटकते रहेंगे। ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग, विद्वत्ता, वक्तृत्व, लोकप्रियता, सौभाग्य आदि गुणों के साथ यदि हम में देव-गुरु के प्रति भक्ति न हो तो हृदय अहंकार से भर जाता है। जहां अहंकार होता है, वहां अधःपतन निश्चित होता है। केवल भक्ति का मार्ग ही ऐसा है जो हृदय में विनय का, नम्रता का, मृदुता का, ऋजुता का, व समर्पणता का भाव उत्पन्न करता है। जब तक व्यक्ति में विनय नम्रता, मृदुता, ऋजुता व समर्पण भाव न हो तब तक हम चाहे जितना ज्ञान प्राप्त कर लें, चाहे जितना कठोर तप कर लें, चाहे बड़े से बड़ा त्याग कर लें, फिर भी हमारी आत्मा का उद्धार होने वाला नही है।

जिस प्रकार चुम्बक लोहे को खीचता है ठीक उसी प्रकार भक्ति मुक्ति को खीचती है। चिन्तामणि रत्न पत्थर (जड़) होते हुए भी विधि पूर्वक उपयोग करने से सर्व मनोवांछित पूर्ण करता है उसी तरह प्रभु की मूर्ति भी चिन्तामणि रत्न के समान है। यदि हम उसकी आराधना विधि पूर्वक, तन-मन से करें तो मुक्ति हमसे दूर नहीं रह सकेगी। वह भक्ति रूपी चुम्बक से स्वयं खिच आवेगी।

हमारे हृदय का भक्तिभाव जितना पवित्र, निर्मल शुद्ध व उच्चतम होगा, उसका फल भी इतना ही सर्वोत्कृष्ट होगा।

भक्ति सदैव निष्काम भाव से करना चाहिये। भक्ति में सांसारिक सुखों, भौतिक लालसाओं का तनिक भी स्थान नही है। इसलिये वीतराग प्रभु की पूजा, उपासना परमार्थ के लिये ही करना चाहिये।

श्री जिनेश्वर देव की भक्ति से ही आत्मा परमानन्द को प्राप्त करती है। भक्त को प्रभु की भक्ति में जो परम-आनन्द की अनुभूति होती है उसका वर्णन शब्दों में करना सम्भव नहीं है। वह केवल आत्मानुभव की वस्तु है। जो व्यक्ति इसका रसास्वादन करना चाहे वह प्रयोग रूप मे ८-१० दिन पूजा करके देखे। प्रभु की नव अंग पूजा भक्ति भाव से करें, फिर उनके गुणों को स्मरण करते हुए, दृष्टि को प्रभु के स्वरूप अवलोकन में लगायें, तब साक्षात् आनन्द का अनुभव हुए बिना न रहेगा।

भक्ति के परम आनन्द का माप वे ही कर सकते है जिन्होने कभी भक्ति की हो। जो मनुष्य जन्म लेने के बाद जिनशासन पाकर भी भक्ति के आनन्द से वंचित हैं, वास्तव में वे आत्मिक आनन्द से ही वंचित हैं।

"हृदय में भक्ति और भक्ति में हृदय"

ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाने पर आत्मा की दिव्य सम्पत्ति हमसे दूर न रहेगी।

श्री पर्युषण महापर्व को प्राप्त उपमाएँ

लेखक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
मित्रानन्द सूरीश्वरजी म० सा०

सर्व पर्वो मे पर्युषण पर्व की महानता, पवित्रता और कल्याणकारिता अजब गजब की है। इस पर्व की महान् महिमा का वर्णन करने मे केवलज्ञानी भी असमर्थ है। श्रुतज्ञान से इस महिमा का वर्णन करना यह दोनो हाथो को फैलाकर समुद्र की विशालता बताने जैसा है।

शास्त्रो मे बडी-बडी उपमाएँ देकर इस पर्व की महिमा गाई है। इस पर्व को अमृत की, महामंत्र नवकार की, कल्पवृक्ष की, कल्पसूत्र की, चन्द्र की, इन्द्र की, सीता सती की, केसरीसिंह की, गरुड की, गगा नदी की, मेरुपर्वत की, भरतेश्वर राजा की और शत्रुजयतीर्थ की उपमाएँ दी गई हैं।

ये असाधारण उपमाएँ पर्युषण महापर्व की गरिमा को अच्छी तरह से सिद्ध-प्रसिद्ध करती हैं।

(१) अमृत की उपमा—औषधियो मे अमृत को श्रेष्ठ माना गया है। बहुत से लोग अमृत को काल्पनिक समझते हैं। जैन महात्माओ ने अनेक स्थानो पर अमृत का उल्लेख किया है। मतलब अमृत काल्पनिक नहीं है, वास्तविक वस्तु है। एक अमृत देवलोक मे है। भगवान् श्री तीर्थंकर देव का जन्माभिषेक हो जाने के बाद भगवान के अगूठे मे अमृत का सचार करते हैं। श्री पार्श्वनाथ पचकल्याणक पूजा मे आता है कि "अगूठे अमृत अमृत वाही नदीसर करे अट्ठाई" अर्थात् प्रभु के अगूठे मे अमृत का सचार करके देव परिवार जन्म-महोत्सव की खुशहाली मे नदीश्वर द्वीप जाकर अट्ठाई महोत्सव करते हैं। दूसरा एक अमृत मृत्यु लोक का मानना चाहिये। जो कि विशिष्ट औषधि स्वरूप है। वनस्पति शास्त्र मे हिमजको शिवा हरडे को अभया कहते हैं। उसी तरह गलोलव को अमृता कहते हैं।

श्री चितामणि स्तोत्र मे आता है कि "पियूषस्य लवोऽपि रोग निवह अर्थात् अमृत का लेश भी रोग के समूह का नाश करता है। श्री शान्ति नाथ प्रभु के स्तवन में भी आता है कि—चाख्यो रे जेणे अमी लवलेश बीजा रे रस तेहने नवि गमेजी

इस तरह औषध मे जैसे अमृत श्रेष्ठ है वैसे सर्व पर्वो मे पर्युषण श्रेष्ठ है। पर्युषण पर्व जीवो को अमृत की अपेक्षा गरज पूर्ण करता है। अमृत तनवदन के रोग को निकालता है तो पर्वाधिराज पर्युषण आत्मा के कर्म रोग को नष्ट करने वाला परम औषधि है। वह कर्म रोग को नष्ट करके मोक्ष रूप परम आरोग्य को भी देता है।

(२) नवकार मंत्र की उपमा—मंत्रो मे नवकार मंत्र सर्वश्रेष्ठ है। मंत्र शिरोमणि है। सब मंत्रो का राजा मंत्राधिराज है। सर्व मंत्रो का बीज भी वही है। चौद पूर्व का सार है। उसी तरह पर्युषण पर्व भी सभी पर्वो मे शिरोमणि है, पर्वाधिराज है। सर्व पर्वो का सार है। नवकार मे मुख्यत विनय धर्म की भव्य आराधना है उसी, तरह पर्युषण मे क्षमा धर्म की साधना मुख्य है।

थोड़े में नवकार में नमो धर्म है, पर्युषण में खमो धर्म है। उसकी आराधना के लिए सात दिन तक जोरदार तैयारी करने से आठवें संवत्सरी के दिन क्षमाधर्म की अद्‌भुत साधना होती है। वैरभाव का शमन और क्षमा धर्म की साधना ही आत्म-विकास का बल है।

(३) **कल्पवृक्ष की उपमा**—दुनिया में वृक्ष बहुत है और अनेक प्रकार के हैं। लेकिन उन सभी वृक्षों में कल्पवृक्ष श्रेष्ठ माना जाता है, कारण उसके पास विधिपूर्वक प्रार्थना करने वाले को यह अवश्य मनोवांछित फल देता है। दूसरे वृक्ष अल्प-फल देते है और बबूल वृक्ष जैसे वृक्ष से फल के रूप में कांटे ही मिलते हैं। उसी तरह पर्व बहुत से है लेकिन उनमें पर्युषण पर्व श्रेष्ठ है। उसकी विधि पूर्वक की गई आराधना इच्छित अनेक आत्मिक लाभ देती है। मोक्ष सुख देने का श्रेष्ठ सामर्थ्य इस पर्व में है।

(४) **श्री कल्पसूत्र की उपमा**—सर्व सूत्रों मे श्रीकल्पसूत्र श्रेष्ठ है। केवलज्ञानी महापुरुष भी उसकी महिमा गा सकते नहीं है। उसी तरह पर्युषण पर्व की महिमा केवलज्ञानी गा नही सकते है। कर्म के मर्म को भेदने वाले क्षमा धन की अमूल्य भेंट देने वाले आत्मशुद्धि द्वारा सुविशुद्ध आराधना के द्वार खोलने वाले पांच एवं ग्यारह कर्त्तव्यों के पालन और श्रवण द्वारा शासन की परम्परा को अविच्छिन्न रखने वाले पर्वाधिराज की गरिमा का वर्णन हो सकता क्या? उसको सूत्र शिरोमणि कल्प-सूत्र की उपमा दी है वही योग्य है।

(५) **चन्द्र की उपमा**—नीले आकाश में अनेक सितारे जगमगा रहे है। लेकिन चांद के प्रकाश की बराबरी करे ऐसा एक भी सितारा नहीं है। चांद की सौम्य और शीतल आभा प्राणी जगत को अपूर्व शांति देती है। उसकी आभा से एक दूसरी वास्तविकता यह है कि वनस्पतियों में औषधि रूप परिणाम आता है। इसलिये उसे औषधिपति भी कहा है। चन्द्र सोलह कलाओं से युक्त होता है। समुद्र में ज्वारभाटा भी वही लाता है। और यह चन्द्र आकाश मंडल का घूमता तिलक भी है।

उसी तरह पर्युषण पर्व लौकिक लोकोत्तर पर्वों में तेजस्वी सितारा है। इस पर्व की तुलना में कोई पर्व आता नहीं। इस पर्व की आराधना अशुभ अनुबंधों को तोड़ देती है। उसका निष्ठावान आराधक संसार में अभिनव शांति को पाता है। इस पर्वत की आराधना से बंधा हुआ पुण्यानुबंध पुण्य भाव प्राणों का पोषक बनता है। इस पर्व में अमारि प्रवर्तनादि पांच कर्त्तव्यों के पालन से पुण्य की बढ़ोत्तरी और क्षमादि धर्म से पाप की कमी होती है। पंचमकाल के जीवो के लिए एक पुण्य का पोषण और पाप का शोषण करने वाला यही अनुपम पर्व है।

(६) **इन्द्र की उपमा**—इन्द्र देवों का राजा अधिपति है, ऐश्वर्यशाली है। लाखो, करोड़ों, असंख्य देवता उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। पर्वाधिराज श्री पर्युषण को इन्द्र की उपमा बिलकुल योग्य लगती है। सभी पर्वो का स्वामित्व पर्युषण को मिला है। लाखों, करोड़ो भव्यात्माएँ पर्वा-धिराज की आराधना करते है। उसका ऐश्वर्य भी उतना ही आकर्षक है। पर्वाधिराज की शोभा अलौकिक रहती है।

(७) **सती सीता की उपमा**—सीता सतियों में श्रेष्ठ है। उदयरत्नजी महाराज ने भी कहा है कि **"सतीओ मांहे शिरोमणि कहीए नित-नित होजो प्रणाम...."** महासती सीताजी का सतीत्व तेजस्वी था। जिस समय सीताजी ने दिव्य किया उस समय अग्नि में प्रवेश होने के पहले सीताजी ने कहा—"हे अग्नि! मन, वचन और शरीर से रामचन्द्रजी के सिवाय कोई दूसरे पुरुष में प्रवेश

पाया हो तो मुझे जलाकर भस्म करदे।" इतना कहकर सीताजी ने अग्नि कुंड में प्रवेश कर लिया। सतीत्व के प्रभाव से अग्नि पानी बन गया। पानी की ऐसी जबरदस्त बाढ़ आयी कि सारी अयोध्या डूब जाय। अयोध्या डूबने की कल्पना से वहां हाहाकार मच गया। सीताजी ने दोनों हाथों से पानी को स्पर्श किया, स्पर्श होते ही पानी जमीन में समा गया। पर पुरुष का मन से एकबार और क्षणबार भी विचार नहीं करना यह सतीत्व की आत्मा है। रावण जैसे स्त्री लंपट नराधम के शिकजे में आते हुए सीताजी शीलधर्म की सुरक्षा के लिए अगनम रहीं, इस कारण सीताजी जगत्-वंद्य बनीं। जब रामचन्द्रजी अयोध्या में ले जाने को इन्तजार है, समग्र अयोध्या सीताजी की चरणरज पूजने वाली है। तभी सीताजी ने महा-वैराग्य से संयम ग्रहण करने का पुरुषार्थ किया। सीताजी का सतीत्व महान् था। इसी कारण सीताजी को सतियों में शिरोमणि गिनते हैं उसी प्रकार पर्युषण पर्व को उसकी पवित्रता के कारण, तारकता के कारण, उद्धारकता के कारण जगत के सर्व पर्वों में शिरोमणि मानते हैं। कैसा भी पापी हो पर्वाधिराज की आराधना से पुण्यशाली बनता है। पर्व के दिनों में पापी को भी पुण्य करने की भव्य प्रेरणा मिलती है।

(८) केसरी सिंह की उपमा—सिंह, यह वन का राजा वनराज कहलाता है। शेर क्रूर और शूर होता है। उसकी गर्जना से जंगल के प्राणी थर-थर कांपते हैं। केसरी सिंह वर्ष में सिर्फ एकबार विषयभोग करता है। दूसरे भी बहुत गुण शेर में हैं।

इस तरह पर्युषण भी पर्वाधिराज है। उसके आराधक के क्रोधादि आत्मदोष भय से थर-थर कांपते हैं, पलायन हो जाते हैं। शेर जैसे सदा निर्भय होता है। वैसे पर्युषण का साधक दोष, दुर्गुण और दुर्गति में भय से रहित बनता है। आराधक में शेर की क्रूरता से भी अत्यधिक क्रूरता पाप मात्र के प्रति प्रगट होती है। एकबार इस पर्व की निष्ठापूर्वक आराधना हो जाय तो आत्मा में धर्म का सुंदर बीजारोपण हो जाता है। धीरे-धीरे मोक्ष सुख की वानगी का रसास्वाद मिलता है। पर्व की आराधना आत्मा में धर्म का रस पैदा कराती है। धर्म के रस को टिकाने का काम भी इस पर्व का है।

(९) गरुड़ की उपमा—गरुड़ पक्षीराज माना जाता है। खुद के ध्येय को बराबर अनुलक्ष करके वह आकाश में उड़ता है। सर्प का वह दुश्मन माना जाता है।

पर्युषण भी पर्वों में राजा समान है। लघुकर्मी भव्य आत्मायें इस पर्व की आराधना हेतुपूर्वक, लक्ष्यपूर्वक आशय शुद्धिपूर्वक करते हैं। आराधक की मोहरूपी सर्प के साथ कायम के लिए दुश्मनावट रहती है। इस पर्व के आराधन से मोह का मारण होता है। इस पर्व की इससे दूसरी विशेष असाधारणता क्या हो सकती है। जिस मोह से आत्मा इस संसार में महादुःखी हो रही है उसी मोह का नाश इस पर्व की असाधारण विशेषता माननी ही होगी।

(१०) गंगा नदी की उपमा—नदियां तो लाखों हैं लेकिन *गंगा समान* दूसरी नदी एक भी नहीं। यह नदी शाश्वत है। उसका प्रवाह कभी सूखता नहीं। विशाल पट और उसका दीर्घ प्रवाह उसकी महानता को सिद्ध करता है। *अन्य दर्शन-कार उसे तीर्थ रूप पवित्र मानते हैं। गंगा में स्नान* करने से पापी भी पावन बनते हैं। उनके पाप धोये जाते हैं ऐसा वे लोग मानते हैं। उसका पवित्र जल अभिषेक के उपयोग में लिया जाता है।

पर्युषण पर्व की महिमा तो गंगा से भी बढ़कर है। प्रत्येक जैन इस पर्व को गंगा से भी अधिक पवित्र मानता है। इस पर्व के पांच कर्त्तव्य के पालन से और अन्य-अन्य आराधना के योगों से पाप मैल अचूक धोया जाता है। इसमे दुमत नही।

(११) मेरु पर्वत की उपमा—मेरु शाश्वत है, अचल है। चाहे कितने ही धरतीकंप के तूफान आएं लेकिन वह स्थिर रहता है। मेरु को सूर शैल, सूरगिरि भी कहते हैं। वहां हमेशा स्वर्गीय देवों का वास रहता है। प्रमाण मे यह सबसे बडा है। पर्वतों में वह राजा है। रमणीय वनों और उपवनों से वह शोभायमान है। उसके मस्तक स्थान पर चुलिका-शिखर है। वहां श्री जिनेश्वर परमात्मा का शाश्वत जिनालय है।

पर्युषण पर्व प्रथम अन्तिम जिनेश्वरदेव के शासन में शाश्वतकल्प है। उसकी आराधना अनन्त भूतकाल में जिस तरह होती थी ताकि अनंतकाल में उसी तरह होती रहेगी। पर्युषण पर्व की प्रतिभा प्रभाव पवित्रता हमेशा स्थिर अणगम अस्खलित रहती है। इस पर्व की अट्ठाइ में देवगण भी प्रभुभक्ति की जोरदार आराधना करते है। आत्मानुशासन का सुन्दर कार्य करने से यह पर्व राजा समान है। मेरु पर्वत राजा है, तो पर्युषण पर्व राज है। मेरु उसके रमणीय उपवनों से देवों को आनन्द, आल्हाद और आराम देता है। उसी तरह पर्युषण भव्यात्माओं को सूत्रशिरोमणि, कल्पसूत्र के श्रवण से पांच कर्त्तव्यों के भव्य प्रवचनों से विरति धर्म की दिव्य आराधना से प्रभुभक्ति, संघ भक्ति, साधर्मिक भक्ति, श्रुतभक्ति से क्षमाधर्म की सुगन्ध से मैत्री भावना के अमीपान से परमानन्द, परमआल्हाद, परम आराम देता है।

(१२) भरतेश्वर की उपमा—प्रथम जिनेश्वर ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरतराजा राजराजेश्वर चक्रवर्ती थे। उनकी ऋद्धि सिद्ध समृद्धि अमाप थी। पुण्य आश्चर्यजनक था। प्रभाव अपूर्व था। वे वैराग्यरस भरपूर थे। इस अवसर्पिणी काल के प्रथम श्रावक वे थे। उनकी साधर्मिक भक्ति अद्वितीय थी। उनमें अगण्य और भव्य विशेपताएँ थी। इसलिए पर्युषण पर्व को भरतेश्वर की उपमा समुचित दी गई है।

पर्युषण पर्व रिद्धि-सिद्धि समृद्धि से राज-राजेश्वर पर्व है। पर्वाधिराज की रिद्धि सिद्धि समृद्धि क्या है ? पर्वाधिराज की रिद्धि है दानादि चार प्रकार के धर्म। जैन संघ इस पर्व के दिनों मे जो दानादि धर्म करता है वह हैरत दे ऐसे होता है। पर्व की सिद्धि है क्षमा धर्म की। वैर विरोध को भगाकर मैत्री भावना की प्राप्ति इस पर्व की अद्भुत सिद्धि है और उसकी बाह्य आभ्यंतर समृद्धि भी अवर्णनीय है। आत्मगुणो की पुष्टि यह आभ्यंतर समृद्धि है। धर्मस्थानो की शोभा सजावट, आंगी, पूजा, भावना, प्रभावना, साधर्मिक वात्सल्य, अनुकम्पादान, वरघोड़ा, वस्त्रा-लंकार की विभूषा यह सब उसकी बाह्य समृद्धि है। जैन शासन के अनेकानेक पर्वो मे प्रथम नम्बर का यह पर्व है।

(१३) श्री शत्रुंजय महातीर्थ की उपमा—संसार सागर से तारे वह तीर्थ। शत्रुंजय तीर्थ सर्वोत्कृष्ट तारक होने से वह महातीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। पन्द्रह कर्मभूमि में इस भरत क्षेत्र मे ही यह एक तारक तीर्थ है, ऐसा दूसरा तीर्थ नही। भूतकाल मे अनन्त तीर्थंकर महाराजा यहां आये, भविष्य मे अनन्त आयेंगे। अनन्तानंत मुनि भगवंतो ने यहां अन्तिम अनशन करके सिद्धि पद प्राप्त किया। भले भले पापी यहां पुण्यशाली बन गये। पशु-पक्षी तीसरे भव में मुक्तिपद पा गये हैं। अभव्य इस तीर्थ को नजर से देख सकता नहीं। भव्य जीव को ही इस तीर्थ का तीर्थ के रूप में

देखने का व तीथभक्ति करने का भाव जागृत होता है। इस तीथ के जैसी तारकता पर्युषण पव की है। अनन्तानत भव्यात्माएँ इस पव की आराधना करके मुक्तिपद पा गये। कई पापी जीव पर्युषण पर्व का आलम्बन प्राप्त करके पुण्यशाली बन गये। पर्वो मे सर्वोत्कृष्ट तारकता पर्युषण महापर्व की है। कारण जीवो को ससार सागर मे डुबाने वाले अनन्तानुवधी के कपाय हैं। उसकी पकड मे फस जाने वाले जीवो को बचाने का, न फसने देने का सराहनीय काय पर्युषण पर्व का है।

उपसहार।

अहो पव महिमा! अहो पर्व गरिमा उत्तमोत्तम क्षमाधर्म की आराधना इस पर्युषण पर्व का प्राण है। इस पव की आत्मा है। उत्तम क्षमाधम की आराधना से इस पर्व का सत्कार करें, सन्मान करें, बहुमान करें। मम के मम को भेदने वाले, धम के मम को समझाने वाले पव के विधायक श्री तीर्थंकर देवो के पावन चरणकमल मे भाव पूर्ण वदना!!!

'मेरी भावना'

अपने भाव भजके, जग माया तजके,
चले जाएँ प्रभु के, के सामने चलें,
सम्यग् दशन सजके, ज्ञान चरित्र भजके,
जाना है हमको प्रभु मुक्ति के किनारे,
जीवन है अपण, प्रभु आपके सहारे,
गुरुजी की वाणी सुनके, मैं मयूर बनके,
अखिल विश्व का कल्याण हो, ऐसा मैं भजन करूँगा,
प्रभु को भजके मैं मोक्ष को वरूँगा,
प्रभुजी का समरण करके मैं चकोर बनके।

रचयिता

☐ हरीश मनसुखलाल मेहता,
जयपुर

अहिंसा : "महावीर प्रभु की दृष्टि में"

☐ लेखक : जिनशासन रत्न आचार्य प्रवर श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी म० सा० के प्रशिष्य मुनि श्री नित्यानन्द विजयजी महाराज

"अहिंसा एक महान् धर्म है। हिंसा से निवृत्त होने का नाम ही अहिंसा है। आत्मा के आवागमन का पुनर्जन्म पर विश्वास रखने से प्राणिमात्र के प्राणों के प्रति प्रतिष्ठा स्वयं पैदा हो जाती है। जिस प्रकार यह शरीर थोड़े से भी अपने दुःख का अनुभव करता है—रोम-रोम मे इस दुःख से एक स्पन्दन पैदा होता है, उसी प्रकार हमें यह भी विचार रखना चाहिये कि वही पीड़ा तथा दुःख दूसरे जीवो को भी महसूस होता होगा। संसार में सभी जीवो का जन्म—मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि योनियो मे स्वकर्मवश-कर्मानुसार ही होता है, जीव मात्र में तो कोई अन्तर नहीं—समानता ही है, अन्तर तो केवल देह रूप में है जो उन्हे कर्मजनित व कर्मफलित है। अतः सुख-दुःख की अनुभूतिया तो सभी मे बराबर हैं अर्थात् सुख-दुःख मनुष्य की तरह ही सभी जीवो को होता है। अतएव उन सब के दुःख को अपने ही दुःख के समान समझना चाहिए।"

यदि इस सिद्धान्त मे छिपी भावना को मानव समझ जाय तो अवश्य ही वह अहिंसा मार्ग के गूढ़ पथ पर चलकर ही महापुरुष कहलाएगा और "अहिंसा परमोधर्मः" का गूढ़ सिद्धान्त विश्व सिद्धान्त बन जायेगा।

श्रमण भगवान महावीर ने अहिंसा धर्म का प्रतिपादन और प्रचार बड़े ही अलौकिक ढंग से किया। उन्होंने मानव जाति को समता का उपदेश देते हुए कहा कि—जीवों में दिखाई देने वाला शारीरिक या मानसिक वैषम्य सब कर्म मूलक है, वास्तविक नहीं है। अतएव क्षुद्र से क्षुद्र योनि में जन्मा जीव भी मानव योनि में पैदा हो सकता है और यह मानव का जीव क्षुद्र-पापाचरण कर्मों के परिणामस्वरूप क्षुद्र योनि में पैदा हो सकता है। इसलिए अहिंसा मार्ग का अनुसरण करते हुए सबके साथ समता का व्यवहार करो। सांसारिक जीवन की सफलता के लिए सदाचार और सद्-विचार परमावश्यक है। जिनका आधार भी अहिंसा धर्म ही है। सुख चाहते हो तो शत्रुता बढाने वाली हिंसा की भावना का त्याग करो और जीव मात्र के प्रति मैत्री की भावना रखो और फिर देखो। तुम उत्तरोत्तर सुख की ओर ही बढ़ोगे।

> एयं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण।
> अहिंसासमयं चेव, एयावन्तं वियाणिया॥
> सू० १-११-१० ॥

> संबुज्झमाणे उ नरे मइमं पावाओ अप्पाण निवट्टएज्जा।
> हिंसप्पसूयाइं दुहाइं मत्ता वेराणुबंधीणि महब्भयाणि॥
> सू० १-१०-२१ ॥

आगम में श्री महावीर स्वामी के वचनों का सार यदि स्पष्ट किया जाय तो सरलता से अहिंसा का मूल मर्म समझ में आ जायगा। बुद्धिमान लोगों को किसी भी प्राणी के लिए मैत्री भी

कष्टदायी प्रवृत्ति वर्जित मानी गई है क्योंकि ससार मे प्रवर्तित बुराइया दु ख कष्टो का मूल कारण हिंसा है और इस प्रवृत्ति से सदा आपसी वैमनस्य द्वेषभाव तथा घृणा को वढावा मिलता है। मानव ही नही, जीवमात्र मे, भय की उत्पत्ति का मूल बीज रूप यही हिंसा है अत विवेकी जीवो को इससे सदा दूर रहना चाहिए। यदि महावीर वाणी के इस कथन को ही प्राणीमात्र के लिए सजगता रूप सकेत चिह्न मान लिया जाय तो क्या यह कहना ठीक न होगा ? सृष्टि मे व्याप्त सभी दुःख वैमनस्य का कारण रूप जीवो में हिंसक मनोवृत्ति का होना ही है। भगवान् महावीर ने आगे कहा है कि—

सय ति वायए पाणे—अदुवाऽन्नेहिं घायए ।
हणत वाऽणुजाणाइ वेर वड्ढइ अप्पणो ॥
सू० १-१-१३ ॥

यदि मनुष्य किसी जीव को स्वय मारता है या दूसरे से प्रेरणा कर मरवाता है या उन्हें मारते हुए देखता है—तीनो प्रकार से उसमे शत्रुता तथा घृणा व भय को वढावा ही मिलता है (दूसरो के प्रति)।

अर्थात्—मन, वचन, काया से किसी भी प्रकार की मनोवृत्ति-वचनात्मक हिंसक शब्दावली तथा शारीरिक हिंसक चेष्टा की भावना भी हिंसकता का द्योतक तथा मनोमालिन्य का कारण है, ऐसी प्रवृत्तियो से जीवन मे वैरभाव-रागद्वेष-कलह तथा भय भावना का सचार होता है। और मानव के अतरग शत्रुओ मे उसकी आत्मा पर जो मोह-पाप और भय का आवरण पडना है वही भावी दुःख और सताप का कारण होता है।

फिर भला दु खपूर्वक जीवन की छाया कौन चाहता है ? कोई नहीं ! मानव विवेकी जीव है, विवेक भावना के कारण वह मन-वचन-काया से सदा स्वसुखो को इष्ट मानता है, किंचितमात्र दु ख भी वह सह नहीं सकता—फिर भी भला वह क्या इतना विवेक सजो नहीं सकता कि यही भावना वह दूसरे प्राणिमात्र के प्रति जागृत रखे ?

यही है अहिंसा की मूल भावना का स्रोत। जिसके निर्मल अमृत से श्रमण भगवान् महावीर सारी सृष्टि को अमरत्व प्रदान करना चाहते थे। इसी भावना से उन्होंने अपने जीवन काल मे इस भावना को प्रत्यक्ष करने हेतु अपने ही ऊपर होने वाले उपसर्गों-सतापो का कभी भी प्रतिकार नहीं किया ? अपितु क्षमा तथा अभयदान के बल द्वारा उन पर विजय प्राप्त की। यहाँ 'सगम' देव द्वारा प्रभु पर किए गए उपसर्गों का उदाहरण देना उचित होगा।

इन्द्र सभा मे—देवराज द्वारा तपस्वी महावीर की तप साधना, सहनशीलता का बखाण सुनकर सगम नामक एक मिथ्यात्वी, क्रोधी देव से महावीर की प्रशसा न सही गई। वह भूलोक पर आया।

एक स्थान पर ध्यानामग्न अवस्था मे महावीर को देखकर उस सगम ने नाना प्रकार से उन्हें ध्यानच्युत करने के लिए प्रयत्न शुरू किये। धूल की वर्षा की, सुई के समान तीक्ष्ण डक वाली चींटियां देह पर चढाई, जो काटने लगीं, प्रचड डास, मच्छर पैदा किये, बिच्छु पैदा किये जो शरीर पर डमने लगे—नेवला बनाकर मास कटवाया, सापों द्वारा शरीर डसवाया, चूहे आदि से सताप पैदा करवाए, मदोन्मत्त हाथी की सूंड से उन्हें उछाल उछाल कर फिकवाया, पिशाच रूप धारण कर भयकर शोर पैदा किया आदि आदि।

क्या आत्मशक्ति के भरपूर महावीर इन साधारण क्षणिक कष्टों का प्रतिकार नहीं कर सकते थे ? वे चाहते तो सगम को ही शठता का मजा चखा सकते थे। परन्तु नही, क्रोधी का प्रतिकार क्रोध को बढाता है, शठ की शठता को रोकने का मार्ग कुछ और है, चींटी, साप, बिच्छु

आसानी से मारे कुचले जा सकते हैं। पर वैसा करना हत्या जघन्य पाप है। उन्हें तो क्षमा-दया से ही जीता जा सकता है और प्राणी मात्र पर दया भाव रखकर अन्ततः संगम का मान-मर्दन करने में महावीर सफल हुए और उसके मिथ्यात्वी स्वभाव पर भी उसे अपमानित से सत्य मार्ग अपनाना पड़ा। अहिंसा के प्रति महावीर की यह दिव्य आस्था प्राणिमात्र के प्रति—"जीओ और जीने दो" के सिद्धान्त का प्रतीक मानी जाती है।

"जब हम सुखपूर्वक जीना चाहते हैं", हमें जरा सा दुःख नही भाता, फिर हम इस अधिकार के प्रति जागरूक भी हैं—तो हमारा यह कर्त्तव्य भी तो है कि प्राणिमात्र को उसके इस अधिकार के लिए स्वाभिमानपूर्वक जीने का अधिकार दें। किसी प्राणी को दूसरे जीव के प्राण (अपने स्वार्थ के लिए) लेने या कष्ट देने का अधिकार ही क्या है?

मन-वचन-काया से सूक्ष्म अथवा दृष्टिगत जीवों के प्रति क्षमा-दया-अभयदान की भावना के प्रणेता श्रमण भगवान् महावीर ने तो—

"समया सव्वभूएसु सतमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई जावज्जीवाए दुक्करं॥
उ० १९-२५॥

अभरं पत्थिवा तुब्भ अभयदाता भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि किं हिंसाए पसज्जसि॥
उ० १८-११॥

अर्थात् सृष्टि मे रहने वाले समस्त जीवों के प्रति समानता का भाव, शत्रु या मित्र, कोई भी क्यों न हो—समता रखना बेशक कठिन सा प्रतीत होता है, परन्तु (अहिंसा मार्ग सेवन से) समभाव धारण से तुझे जो क्षमा मैं देता हूँ तू भी बदले में दूसरे जीवों के प्रति क्षमा सुरक्षा (अभयदान) की भावना धारण कर और हिंसक वृत्ति से सर्वथा दूर रहकर किसी भी जीव को जरा भी कष्ट न दे, उन्हें अपने जीव समान जान इस महामंत्र का उपदेश जन साधारण को दिया।

अन्ततः इस भावना के पीछे प्राणीमात्र के प्रति दया भाव, सुरक्षा तथा अभयदान को गुरुमंत्र मानव समाज के समक्ष भगवान महावीर ने प्रस्तुत किया उसमें जीव मात्र के कल्याण की भावना ही सर्वश्रेष्ठ थी। यदि हम इसे यूं विचार करें कि अहिंसा की भावना सृष्टिजन्य प्राणिमात्र के प्रति अभयदान की भावना हेतु है तो कितना महान् वरदान भगवान महावीर ने समस्त विश्व को दिया, कितना सारगर्भित कथन होगा।

"हिंसक विचार हिंसा के बीज रूप हैं, वैमनस्य के स्रष्टा और अशान्तता के प्रेरक है और सृष्टि में जो घृणित वातावरण फैला हुआ है उस पर विजय प्राप्त करने का यदि कोई अमर मार्ग है तो वह है अहिंसा-भावना का अनुसरण तभी यह विश्व शान्ति को प्राप्त करने मे समर्थ होगा।

श्रमण भगवान् महावीर के इस वरदान को यदि अपनालें—तो शांति का वातावरण साकार हो सकता है।

☐ ☐ ☐

जैन दर्शन के अकाट्य सिद्धान्त

गुजराती लेखक अध्यात्म योगी निस्पृह शिरोमणी पूज्यपाद पन्यास प्रवर श्री भद्रकर विजयजी गणिवर्य
हिन्दी अनुवाद मुनि रत्न सेन विजय (पाटण उ गुजरात)

मध्याह्न समय मे बादल रहित सूर्य विद्यमान होने पर भी जिस प्रकार गुप्त गृह मे रहे व्यक्ति को प्रकाश के लिए दीपक की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार जगत् में रहे समस्त प्रकार के अज्ञानरूपी अधकार को दूर करने मे समर्थ ऐसे जिनोक्त आगम प्रमाण विद्यमान होने पर भी विशिष्ट प्रकार की अयोग्यता से आवृत आत्मा के लिए दीपक समान अन्य प्रमाणो की भी आवश्यकता रहती है।

'आत्मा, परलोक, स्वर्ग, नरक आदि पदाथ हैं'—इस प्रकार का सामान्य निश्चय हो जाने के बाद विशेष निश्चय कराने वाले आगम प्रमाण का अवलबन अत्यन्त ही उपकारक बन सकता है।

अनुमान आदि प्रमाणो के द्वारा होने वाला निश्चय, चाहे जितना यथाथ होने पर भी वह सामान्य निश्चय ही है। आगम उनका विशेप निश्चय कराना है और केवल ज्ञान उनका सर्वांश निश्चय कराता है, सर्वांश निश्चय केवलज्ञान के बिना शक्य नही है। फिर भी क्रमश अधिकाधिक निश्चय हो, उसके लिए प्रयत्न करना यह छद्मस्थो का परम कर्तव्य है।

यहाँ एक बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि विशेप धर्मों का अपूर्ण निश्चय, यथार्थ ज्ञान को अयथार्थ नहीं कर सकता है। एक व्यक्ति को मनुष्य के रूप मे जान लेने के बाद 'वह कहाँ रहता है?' वह किसका पुत्र है? इत्यादि विशेप धर्मों को नहीं जानने पर भी, मनुष्य के रूप मे प्राप्त ज्ञान अयथार्थ नही हो सकता है। अर्थात् उसकी यथार्थता यथावत् रहती है।

समस्त पर्यायो के बाद समस्त द्रव्यो का ज्ञान कराने का सामर्थ्य एक मात्र केवलज्ञान रूपी प्रत्यक्ष प्रमाण मे ही रहा हुआ है। इसी कारण छद्मस्थ आत्माओ को अमुक मर्यादा तक के ज्ञान मे ही सतोप धारण करना पडता है, छद्मस्थ के ज्ञान मे तरतमता अवश्य हो सकती है। फिर भी सर्व विशेप विपयक ज्ञान छद्मस्थ अवस्था मे शक्य नही है।

देह और आत्मा

जिस प्रकार जिस वस्तु का निपेध करने मे आता है उस वस्तु का अवश्य अस्तित्व होता है उसी प्रकार जिस वस्तु का सशय होता है, उस वस्तु का भी जगत् मे अवश्य अस्तित्व होता है।

यह सीप है अथवा रजत (चादी)?
यह सर्प है अथवा डोरी है?

इस प्रकार का सशय उभय पदार्थ के अस्तित्व का निश्चय होने पर ही होता है। उसी प्रकार से 'यह देह है अथवा आत्मा है?' का सशय भी यह सिद्ध करता है कि जगत् मे आत्मा और देह उभय पदार्थों का अस्तित्व रहा हुआ है।

यदि आत्मा का अस्तित्व ही न हो तो 'देह ही आत्मा है अथवा उससे भिन्न है? इस प्रकार का

संशय कभी पैदा नहीं हो सकता है। इसी प्रकार देह और आत्मा ये दो शब्द ही देह और आत्मा के पार्थक्य (भिन्नता) को सिद्ध करने में समर्थ हैं।

स्व संवेदन प्रत्यक्ष :

प्रत्यक्ष दो प्रकार के हैं। (१) व्यावहारिक और (२) पारमार्थिक।

व्यावहारिक प्रत्यक्ष के भी दो प्रकार हैं—(१) ऐन्द्रियक (इन्द्रिय जन्य) प्रत्यक्ष और (२) मानसिक स्व संवेदन प्रत्यक्ष।

आत्मा इन्द्रियो से अगोचर होने से उसका ऐन्द्रियक प्रत्यक्ष नहीं होता है, फिर भी स्व संवेदन मानसिक प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध है।

'मैं हूँ' इस प्रकार का अनुभव सभी को होता है। यदि यह अनुभव भ्रान्त हो जाय तो दूसरा एक भी अनुभव अभ्रान्त नही बन सकता है। जब तक आत्मा को स्वयं की भ्रान्ति है, तब तक वह दूसरे पदार्थों का अभ्रान्त ज्ञान कैसे कर सकती है ?

घट, पट आदि अन्य पदार्थों का ज्ञान आत्मा को अभ्रान्त रूप से हो सकता है, इससे यह सिद्ध होता है कि उसे अपना ज्ञान तो सुतराम् (अत्यन्त ही) अभ्रान्त है। आत्मा यदि स्व संवेदन प्रत्यक्ष न हो तो 'मैं हूँ अथवा नही ?' इस प्रकार का संशय भी नही हो सकता है। जिसे इस प्रकार का संशय होता है, वही आत्मा है।

छद्मस्थ प्रत्यक्ष :

केवल ज्ञानी सिवाय अन्य छद्मस्थों को सर्व वस्तु का देश से ही (आंशिक) प्रत्यक्ष होता है। उसका अर्थ यह है कि स्थूल पदार्थों का एक देशीय ही प्रत्यक्ष होता है। समस्त वस्तुओं का सर्वदेशीय प्रत्यक्ष केवल ज्ञान के बिना संभव नहीं है।

जिस प्रकार रूपी पदार्थों का प्रत्यक्ष उसके रूप रस आदि प्रमुख गुणों के द्वारा होता है, उसी प्रकार अरूपी आत्मा आदि पदार्थों का प्रत्यक्ष भी उसके गुणों के द्वारा ही हो सकता है। यह नियम छद्मस्थों के लिए सर्वसामान्य है, अनिवार्य है और निरपवाद है।

छद्मस्थ आत्मा जिस किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करती है, वह प्रत्यक्ष उस वस्तु के कुछ गुणों और पर्यायों का ही होता है। फिर भी वह प्रत्यक्ष उस वस्तु का ही प्रत्यक्ष कहलाता है क्योंकि पर्याय और गुण से वस्तु कोई भिन्न पदार्थ नहीं है।

आम्र के रूप-रस आदि कुछ विशेषों का प्रत्यक्ष ही छद्मस्थ के लिए आम्र का प्रत्यक्ष है न कि उसके समस्त विशेष धर्मो का प्रत्यक्ष।

इसी न्याय से छद्मस्थ को आत्मा का प्रत्यक्ष, आत्मा के कुछ गुण और पर्याय के ज्ञान द्वारा ही शक्य है। स्मृति, जिज्ञासा, चिकीर्षा (करने की इच्छा), संशय विपर्यय आदि ज्ञान विशेष आत्मा के गुण है और ये समस्त गुण प्रत्येक आत्मा को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। छद्मस्थ के लिए गुण का प्रत्यक्ष यही गुणी का प्रत्यक्ष है, क्योंकि गुणी को छोड़कर गुण कभी भी अलग नही रह सकते हैं।

आत्मा को सिद्ध करने वाले अनुमान :

आत्मा संवेदन प्रत्यक्ष होने पर भी उसकी सिद्धि के लिए अनुमान प्रमाण भी अनेक हैं।

1. शरीर का कर्ता :

शरीर आदिमान् प्रतिनियत आकार वाला है। अतः उसका कर्ता कोई अवश्य होना चाहिये। जैसे घट-पट आदि आदिमान प्रतिनियत आकार वाले हैं, अतः उनके कर्ता कुम्हार आदि अवश्य होते है।

द्वीप, समुद्र, मेरुपर्वत आदि आदिमान नही है, अतः उनका कोई कर्ता नही है। मेघ, इन्द्र धनुष आदि प्रतिनियत आकार वाले नही है, अतः उनका कोई कर्ता भी नही है। शरीर यह आदिमान् भी है और प्रतिनियत आकार वाला भी है, अतः उसका कर्ता अवश्य होना चाहिये। जो कोई भी उसका कर्ता है—वही आत्मा है।

2 शरीर का भोक्ता

शरीर भोग्य है, अत उसका कोई भोक्ता अवश्य होना चाहिये। जैसे भोजन, वस्त्र आदि भोग्य हैं, अत उनका कोई न कोई भोक्ता अवश्य होता है।

3 इन्द्रियों का अधिष्ठाता

इन्द्रिया ज्ञान मे कारण रूप हैं, अत उनका अधिष्ठाता (चैतन्य सपादक) होना ही चाहिए, जैसे दड, चक्र आदि कारण हैं अत उनका अधिष्ठाता कुम्हार होता ही है।

4 विषयों का आदाता (ग्राहक)

इन्द्रिया आदान हैं—और विषय आदेय हैं। जहाँ आदान-आदेय होता है, वहां आदाता अवश्य होना चाहिये। जैसे— आदान है और लोहा आदेय है अत उनका आदाता लुहार भी अवश्य होता है। इसी प्रकार इन्द्रियो के द्वारा विषयो का आदान करने वाला जो है, वही आत्मा है।

5 शरीर का स्वामी

शरीर प्रतिनियत सघात और रूप आदि से युक्त है। अत उसका कोई स्वामी अवश्य होना चाहिये। जिस प्रकार सघात और रूपादि से युक्त घर आदि का स्वामी अवश्य होता है। प्रतिनियत सघात और रूपादि से जो युक्त नहीं है, उसका स्वामी भी कोई नही है, जैसे जगल की पहाडी अथवा रेती की ढेरी।

इस प्रकार आत्मा को छोडकर शरीर, इन्द्रिय आदि का अन्य कर्ता सिद्ध नही हो सकता है।

परलोक सिद्धि

'आत्मा यह सत् पदार्थ है, किन्तु असत् पदार्थ नहीं है। जो वस्तु सत् होनी है, वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन धर्मों से भी युक्त होती है।'

प्रत्येक वस्तु का अमुक धर्म द्वारा उत्पाद और अन्य धर्म के द्वारा विनाश होता है तथा वस्तु कायम भी रहती है।

आत्मा यह सत् पदार्थ है, किन्तु जब तक वह कर्म से सबद्ध है, तब तक उसका नरक आदि चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण चालू ही रहने वाला है और यह परिभ्रमण जब तक चालू रहता है, तब तक जीव का नारक आदि पर्याय रूप मे उत्पाद और मनुष्यत्वादि पर्याय रूप मे विनाश भी चालू रहता है। फिर भी इस उत्पादन और विनाश मे भी जीव का जीवत्व रूप अवस्थान तो त्रिकालाबाधित रहता है। कर्म सबद्ध जीवो का जो मनुष्यत्वादि पर्याय रूप मे जो विनाश है, वही उसकी मृत्यु है और नारकत्वादि पर्याय रूप मे जो उत्पाद है, वही उसका जन्म है, इसी का नाम परलोक है।

कर्म की सिद्धि

आत्मा है अत परलोक है। यह परलोक चतुर्गति रूप ससार है। उसका कारण कर्म है। कर्म से मुक्त आत्मा चतुगति रूप ससार मे परिभ्रमण नही करती है, परन्तु उनके लिए लोक के अग्र भाग में एक निश्चित स्थान है। कर्म के सर्वथा विनाश से मुक्तावस्था प्राप्त होती है। जब तक आत्मा कर्म से बद्ध है, तब तक चतुगति रूप ससार है। आत्मा स्वसवेदन प्रत्यक्ष है, किन्तु कर्म स्वसवेदन प्रत्यक्ष नही है क्योकि कर्म आत्मा का गुण नही है, किन्तु वह कार्मण वर्गणा के सूक्ष्म पुद्गल स्वरूप है, जो केवल सर्वज्ञो के लिए प्रत्यक्ष है। आत्मा पर लगे कर्म पुद्गल भी छद्मस्थो के लिए प्रत्यक्ष नही है क्योकि वे अत्यन्त ही सूक्ष्म है, फिर भी अनुमान से साध्य है। जिस प्रकार विद्यमान परमाणु अतिशय सूक्ष्म होने से इन्द्रियो से अगोचर है फिर भी स्कधादि कार्य द्वारा अनुमान गम्य है उसी प्रकार आत्मा के साथ सम्बद्ध विद्यमान कामण वर्गणा के पुद्गल भी उसके कार्यों के द्वारा केवल अनुमान गम्य है।

कर्म की सिद्धि के लिए यहाँ दो-तीन अनुमान बताते हैं।

सुख-दुःख अनुभव का कारण :

सुख-दुःख का अनुभव कार्य है अतः उसका हेतु कर्म है। 'अंकुर रूप कार्य का हेतु बीज है' इस प्रकार यदि कोई यह कल्पना करे कि 'सुख-दुःख के अनुभव में हेतु रूप आहार-कंटक आदि प्रत्यक्ष वस्तु को छोड़कर अप्रत्यक्ष कर्म को मानने की क्या आवश्यकता है।' तो यह कल्पना बराबर नही है, क्योंकि आहार-कंटक आदि सुख-दुःख के तुल्य साधन वालों के बीच भी सुख-दुःख के अनुभव रूप फल में जो अनेक प्रकार की तरतमता दिखाई देती है, उस तरतमता रूप कार्य का कारण कर्म सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है।

बाल शरीर का कारण :

जिस प्रकार युवान शरीर बाल शरीर पूर्वक है उसी प्रकार बाल शरीर भी शरीरान्तर पूर्वक है। बाल शरीर का जो कारण है, उस शरीर का नाम कार्मण शरीर या कर्म है।

विश्व में सुखी अल्प और दुःखी अधिक का कारण ?

क्रिया मात्र फलदायी है। दान आदि भी क्रिया है, अतः वह भी फलदायी है। 'कृषि क्रिया की तरह प्रशंसा आदि दृष्टफल ही दानादि क्रिया के फल हैं किन्तु अदृष्टफल कुछ भी नही है'— ऐसा मानने पर हिंसा आदि अशुभ क्रियाओं का फल अपकीर्ति आदि दृष्टफल ही मानना पड़ेगा और अदृष्ट फल कुछ भी नहीं रहेगा : इससे मृत्यु के बाद सभी पापात्माओं का भी मोक्ष हो जाएगा क्योंकि दृष्ट फल तो प्राप्त हो गया है और अदृष्ट फल तो कुछ भी नही है।' परन्तु यह बात युक्ति सिद्ध नहीं है। क्योंकि प्रत्येक शुभ-अशुभ क्रिया का अदृष्ट फल अवश्य है, क्योंकि दृष्ट फल एकांतिक नहीं है। किसी को मिलता है और किसी को नहीं भी मिलता है। दृष्टफल में दिखाई देने वाली तरतमता से ही दृष्टफल में अनैकान्तिकता सिद्ध हो जाती है। इतना ही नहीं, दृष्ट फल में तरतमता रूप कार्य का कारण भी कर्म ही है। क्योंकि संसार में अधिकांश जीव दृष्ट फल की इच्छा से ही क्रिया करने वाले होते हैं, फिर भी अनिच्छा से भी उन्हें अदृष्ट फल भोगना पड़ता है।

सभी जीव सुख के अभिलाषी और दुःख के द्वेषी होने पर भी संसार में सुखी थोड़े और दुःखी अधिक दिखाई देते हैं—यह भी अदृष्ट फल की एकांतिकता का ही प्रमाण है। विश्व में दानादि शुभ क्रियाओं को करने वाले अल्प होते हैं और हिंसा आदि अशुभ क्रियाओं को करने वाले अधिक होते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि शुभ अदृष्ट का बांधने वाले अल्प और अशुभ अदृष्ट को बांधने वाले जीव अधिक हैं और इसी कारण सभी सुख की इच्छा वाले होने पर भी सुखी अल्प हैं और दुःख की लेश भी इच्छा नहीं होने पर भी दुःखी बहुत है।

पुण्य और पाप :

आत्मा है, आत्मा का परलोक है और परलोक का कारण कर्म का संबंध भी है तो फिर पुण्य और पाप की सिद्धि के लिए नये अनुमानों की आवश्यकता नहीं है। सुखानुभव में निमित्तभूत कर्म के शुभ पुद्गल पुण्य है और दुःखानुभव में निमित्तभूत कर्म के अशुभ पुद्गल पाप हैं।

पुण्य और पाप दोनों भिन्न हैं क्योंकि उनके कार्यभूत सुख-दुःख का एक साथ अनुभव नही होता है।

सुख-दुःख के कारणभूत पुण्य और पाप दोनों स्वतन्त्र द्रव्य हैं। सम्मिलित पुण्य-पापात्मक एक कर्म कभी भी नहीं घट सकता है क्योंकि सम्मिलित पुण्य-पापात्मक कर्मबंध का कोई कारण नहीं है।

मिथ्यात्व, अविरति आदि कर्मबंध के हेतु है, इन सब हेतुओं के साथ मन, वचन और काया के योग रूप हेतु भी होता ही है। योग हमेशा एक समय में शुभ अथवा अशुभ ही हो सकता है, किन्तु शुभाशुभ उभय स्वरूप योग एक समय में संभव

नही है। इससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पाप दोनो स्वतन्त्र द्रव्य है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

स्वर्ग और नरक

चार गतियो मे मनुष्य और तिर्यंच तो सभी को प्रत्यक्ष हैं, किन्तु देव और नरक प्रत्यक्ष नहीं हैं, परन्तु उन्हें यथाशक्य प्रत्यक्ष (इन्द्रिय प्रत्यक्ष) प्रमाण और आगम प्रमाण द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारे आदि के विमान प्रतिदिन दिखाई देते हैं, उनको कौन इन्कार कर सकता है, तथा व्यतर आदि देवकृत अनुग्रह और उपघात भी प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

अनुमान से भी देवगति की सिद्धि हो सकती है। अतिशय पाप को भोगने के लिए नरकगति के स्वीकार की आवश्यकता है, उसी प्रकार अतिशय पुण्यफल को भोगने के लिए देवगति का स्वीकार अनिवाय है।

मनुष्यगति मे अति सुखी व्यक्ति भी रोग-जरा आदि दु खो से ग्रस्त होते हैं और तिर्यंच गति मे अति दु खी तिर्यंच भी सुखदायक- हवा-पानी आदि की प्राप्ति कर सकते हैं। अत अतिशय पुण्य और अतिशय पाप के फल एकात सुख और एकात दु ख को भोगने के लिए देव और नरक इन दो गतियो का स्वीकार करना ही पडता है।

देवो मे पृथ्वीतल पर आने की शक्ति होने पर भी अतिशय सुख के कारण वे यहां नही आते हैं, फिर भी भक्तिवत देव जिनेश्वरदेव के कल्याणक समय, तीर्थंकर देवो की देशना श्रवण के लिए अथवा किसी महर्षि के तपगुण से आकृष्ट होकर पृथ्वीतल पर आते हैं। पूवजन्म के अनुराग अथवा वैर से वतमान मे भी क्वचित् देवताओ के आगमन की बात जानने/सुनने को मिलती है।

बध और मोक्ष

आत्मा और कम का एक प्रदेशावगाहन रूप परस्पर मिलन को बध कहते हैं और कर्म के साथ मिले आत्मा का कर्म के बधन से सर्वथा मुक्त होना यही मोक्ष है।

यहाँ किसी को शका हो सकती है 'जीव और कर्म का सवध आदिमान् है या अनादिमान् ? यदि आदिमान् है तो सिद्ध होता है कि पहले जीव शुद्ध था तो फिर उसे कम कैसे लगे ? शुद्धात्मा को बिना कारण कर्मबध हो जाय तो फिर मुक्तात्मा को भी क्यों नही होगा ? इस आपत्ति को दूर करने के लिए यदि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादिमान् मानोगे तो भी प्रश्न खडा होता है— 'जीव और आकाश का सवध अनादिमान् होने से जैसे अतरहित है उसी प्रकार जीव और कर्म का सम्बन्ध भी अनादिमान् होने से कभी नष्ट नहीं हो सकेगा।'

जीव और कम के सम्बन्ध मे उपरोक्त शकाए अनुचित हैं क्योकि जीव और कर्म का सम्बन्ध बीज-अकुर की तरह हेतु-हेतुमद् (कार्य-कारण) भाव वाला है। अत अनादि होने पर भी अत वाला मानने मे किसी भी प्रकार की आपत्ति नही रहती है।

बीज अकुर अथवा पिता-पुत्र आदि की अनादि परम्परा भी किसी भी एक वस्तु (कार्य) को उत्पन्न किये बिना नष्ट हो सकती है। अथवा सुवर्ण-मिट्टी का सयोग अनादि होने पर भी अग्नि आदि के ताप से उसका अत ला सकते हैं। अभव्य आत्मा का कर्म-सम्बन्ध अनादि अनत होता है, किन्तु भव्यात्मा सम्बन्ध उस प्रकार का नहीं होता है। योग्य सामग्री और प्रयत्न के द्वारा उसका अत भी किया जा सकता है। जिस प्रकार लोक मे प्रागभाव अनादि होने पर भी सात है उसी प्रकार भव्यात्मा का भव्यत्व अनादि होने पर भी सात हैं। प्रागभाव अवस्तुरूप नही है क्योकि घट का प्रागभाव मिट्टी के पिंड स्वरूप होने से भाव रूप हैं। इस प्रकार अनादि बद्ध आत्मा भी बध के हेतुओ को दूर कर, योग्य उपाया के द्वारा पूवबद्ध

कर्मों को सर्वथा दूर कर आत्मा के स्वाभाविक अवस्थान रूप मोक्ष पा सकती है।

मोक्ष में सुख है ?

किसी के मन में यह प्रश्न उठ सकता है—'सर्व कर्मों से छुटकारा ही मोक्ष है, उस मोक्ष में शरीर आदि का अभाव होने से सुख कैसे हो सकता है ?

इसका प्रत्युत्तर है—'देह और इन्द्रियों के द्वारा जो शब्द आदि विषयों का उपभोग किया जाता है वह सुख नहीं है किन्तु इन्द्रियादिजन्य औत्सुक्यादि दुःख का परिहार मात्र है। ज्ञानावरणीय आदि सर्व घाति-अघाति कर्मों के आवरण से सिद्धात्माएं मुक्ति होने के कारण उत्कृष्ट ज्ञानवान हैं और दुःख के हेतुभूत वेदनीय आदि अघाति कर्मों का क्षय हो जाने से वे निराबाध सुखी है।

शरीर और इन्द्रियजन्य सुख, वास्तव में सुख नही है। वह सुख-दुःख के प्रतिकार रूप होने से मोहमूढ़ आत्माएं उसमें सुख की कल्पना कर देती है। रोगोपशांति के लिए कटुक औषध का पान दुःख रूप होने पर भी सुख रूप माना जाता है उसी प्रकार मोहजन्य औत्सुक्य से उत्पन्न विषय सुख, अरतिरूप दुःख के प्रतिकार वाला होने से लोक में उसे उपचार से सुख मानते हैं। उपचार हमेशा सत्यवस्तु का ही होता है और वह सत्य सुख सर्व कर्मों से रहित मुक्तात्माओं को ही है। मुक्तात्माओं का सुख निष्प्रतिकार होने से निराबाध है, इसीलिए निरुपचरित मोक्ष सुख ही सुख शब्द के व्यपदेश के लिए योग्य है। इसके सिवाय का सुख उपचरित होने से सुखाभास मात्र है।

सभी भव्यात्माएँ जिनेश्वर प्ररूपित सत्य सिद्धान्तों को समझकर सन्मार्ग में प्रयत्नशील बनकर शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बने, इसी शुभाभिलाषा के साथ।

सत्कार्य करने का अवसर बहुत पुण्योदय से ही प्राप्त होता है अतः किसी भी शुभ अवसर को हाथ से न जाने दो। उससे लाभ कमा लो।

ज्ञान मानव का तीसरा नेत्र है। चर्म नेत्रों से तो प्रत्यक्ष स्थित वस्तु का ज्ञान होता है जबकि ज्ञान के नेत्र से भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकाल का तथा त्रिलोक का ज्ञान संभव है।

श्मशान की शाति यह कहती है कि
इन्सान नही कफन बदलता है ।

पाश्चात्य दर्शन एवं वैज्ञानिक विचारधारा

उन्नीसवीं शताब्दि मे इग्लैंड के सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक 'हक्सले' हुए थे, जो विवर्तनवाद और नीति (evolution and ethics) नामक ग्रथ मे जन्मातर वाद का समथन करते हुए लिखते हैं कि अन्य चपल मतिवाले से जानवर जन्मातरवाद को एकदम असभव बताकर विच्छेद मत करें। विवतनवाद की तरह जन्मातरवाद भी सत्य की वेदिका पर प्रतिष्ठित है । उपमान प्रमाण (analoop) की दृढ युक्ति द्वारा उसका समर्थन कर सकते हैं ।

पोलिश विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अध्यापक लुटोलस्की (जिनकी जीवन घटना जुलाई सन् १९२३ के (hibbert journal) मे प्रकाशित हुई थी) का कहना है कि जन्मातर की सत्यता के सबध मे तनिक भी सदेह नही है । (absolute reataiaty of hispree minee and reine-traation) इस विषय मे हमे मालूम होता है कि इस समय पृथ्वी पर जन्म धारण किया, इससे पूर्व भी हमारे अनेक जन्म हुए थे ।

उन्नीसवीं शताब्दि मे पाश्चात्य देशो मे सर्व प्रधान साहित्यकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक और कवि सम्राट् जेट ने एक बार कहा था कि मेरा दृढ निश्चय है कि मैं जैसा इस समय हूँ, वैसा तो हजारों बार था, और, और भी सहस्रो बार पृथ्वी पर आऊँगा ।

वशीकरण विद्यार्थी, मृतात्मा के पूर्व जन्म की और पुनर्जन्म की सिद्धि करने वाले प्रयोगकर एलक्झेंडर केनाने ने दि पावर विदिन (the power within) नामक अंग्रेजी पुस्तक में लिखा है कि एक समय ऐसा था, जब बहुत वर्षों तक पुनर्जन्म का सिद्धान्त मेरे लिए एक भयानक समस्या बनकर रह गया था। उस समय मैं इस सिद्धात का खडन करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था । मैं तो वशीकरण विद्या विशारद हूँ । इसलिए कई बार अनेक व्यक्तियो पर वशीकरण विद्या का प्रयोग करता रहता था और अनेक विषयो की बातें पूछा करता था। किन्तु जब कोई भी व्यक्ति मेरे साथ पूर्व जन्म की बात करता था, तो मैं उसका खडन करता था। किन्तु अफसोस ? जब मेरे प्रयोग मे अनेक बार अलग-अलग व्यक्तियो के पास से यही बात दुहराई जाने लगी, तो मुझे मानना पडा कि अवश्य पुनर्जन्म जैसी कोई वस्तु अस्तित्व मे है ।

आगे बढते हुए श्री एलेक्झेंडर केनाने ने अपनी पुस्तक मे बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे यह बात कही है कि वर्तमान काल का जीवन जीने वाला कोई भी व्यक्ति अपने जीवन मे जो सुख दु ख प्राप्त करता है, उसका बीज तो पूव जन्म मे ही पडा रहता है, जो अभी अकुरित होता है । मानव के वतमान जीवन मे जो आघात प्रत्याघात दिखायी देता है वह इस जीवन और पूर्व जीवन के बीच सेतु रूप हैं, जिसको पूव देशो मे 'कर्म' के नाम से पहचाना जाता है । बहुत से व्यक्ति अपने वर्तमान जीवन मे आई हुई विपत्ति, वेदना, व्यथा का कारण नही समझ पाते । किन्तु यहाँ पर पूर्व जन्मवाद का सिद्धान्त ही इन सब का कारण दिखायी देता है । क्या दु ख, क्या सुख, दोनो का अवश्य कोई कारण होता है उसका कारण जीवात्मा के वर्तमान जीवन मे या जन्मान्तर मे दृष्टिगोचर होता है ।

एलेक्झेंडर केनाने जैसे अनेक वशीकरण विद्या विशारदों ने सैकडों प्रयोगो और अनुभवो के बाद ऐसा ठोस निर्णय दिया है । छठे नम्बर के अत्यत गहरे वशीकरण के प्रयोग के बाद पूवजन्म की बात सिद्ध हो जाती है और इससे तो वर्तमान

काल की अनेक गूढ़ समस्यायें सुलझायी जा सकती है। इस विद्या के निष्णात जिन पर गहरा वशीकरण का प्रयोग करते हैं, उनमें से बहुत से आत्मा की सत्यता व नित्यता के प्रश्न पूछते हैं। इस सत्य का वर्णन अपनी 'दि पावर विदिन' नामक पुस्तक के १७४वें पृष्ठ पर करते हुए एलेक्झेंडर केनाने लिखते हैं कि हम जीवात्मा मरते नहीं है हम तो शाश्वतकाल तक रहते है। आत्मा अमर है।

आज के बुद्धिजीवी मनुष्य इसे मानें या न मानें, परन्तु इस सिद्धात ने तो अनेकों की मानसिक यातना दूर की है।

पुनर्जन्मवाद का सिद्धांत मानने से क्या लाभ ?

आत्मा की अमर दशा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है।

राग और द्वेष का निरोध होता है।

पुनर्जन्म के सिद्धांत से पुण्योपार्जन में प्रवृत्ति और पाप प्रवृत्ति से निवृत्ति होती है।

कुसंस्कार का विच्छेद और सुसंस्कार का उदय होता है।

कर्म जैसी महान् सत्ता स्वीकार्य होती है।

नैतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक वृत्ति मे परायण बनते है।

हिप्नोटिज्म वशीकरण द्वारा पायी हुई पूर्वजन्म की स्मृतियां :

हमको ऐसे अनेक मानव मिलेंगे जो कई प्रकार के भयों से पीड़ित हैं। ऐसे भय की ग्रंथि से पीड़ित मानव की पीड़ा का कारण पाया नहीं जा सकता और वर्तमान जीवन में उसका कारण नहीं दिखता।

विदेशी प्रयोगकर्ता 'अलेक्झेंडर केनाने' ने अपने 'दि पावर विदिन' नामक ग्रंथ में दो प्रयोगों के विवरण में स्पष्ट बताया है कि वशीकरण विद्या के ऐसे प्रयोग में सफलता प्राप्त होने पर उनके वर्तमान काल के भय का कारण ज्ञात करते हैं।

पहला प्रयोग :

एक आदमी था। वह कभी लिफ्ट में नहीं बैठता था। उसे लिफ्ट में से गिर जाने का भय रहता था। एक दिन वह एक वशीकरण विद्या-विशारद् (हिप्नोटिस्ट) के पास गया और अपना पूरा वृत्तान्त कहा। हिप्नोटिस्ट ने उससे पूरी पूछ-ताछ की किन्तु उसके वर्तमान जीवन में भय का कोई भी कारण दिखाई नहीं देता था। बाद मे उसे लिटाकर वशीकृत किया। तब उसने कहा—मै पूर्वजन्म मे 'चीनी जनरल' था और एक बार बहुत ऊँचे मकान से गिर जाने से मेरी खोपड़ी टूटी और तत्काल मरण की शरण लेली।

इतना सुनकर हिप्नोटिस्ट ने उसे जागृत करके कहा—'चीनी जनरल' के जीवन में तुम गिर गये थे उसी भय के संस्कार तुम्हारे में दृढ़ हो गये और अभी भी तुम जब कभी लिफ्ट में बैठने का विचार करते हो तो पूर्व का भय जागृत हो जाता है और तुमको डराता है।

दूसरा प्रयोग :

एक स्त्री थी। वह जल को देखते ही भयभीत बन जाती थी। वह किसी भी नदी, कुए, तालाब या समुद्र के पास नही जाती थी। एक दिन वह एक हिप्नोटिस्ट से मिली उसने स्त्री को लिटाकर पूर्वजन्म की स्मृति को जागृत किया। उसने पूर्व-जन्म की बात बताते हुए कहा कि पूर्वजन्म में वह रोम देश में एक पुरुष गुलाम रूप में जीवन व्यतीत करती थी, तब किसी अपराध के कारण उसके पैरों मे बेड़ियाँ डालकर उसे पानी मे डूबाकर मार दिया गया। इस घटना से हिप्नोटिस्ट ने निश्चय किया कि उसी पानी के भय के संस्कार दृढ़ और मजबूत बन गये, इसीलिये ये संस्कार इस भव में जागृत हो जाते हैं।

पूर्वजन्म के कारण प्राप्त होने वाले अनेक विषयों के संस्कार प्राप्त करने वालों के अन्तिम उदाहरण :—

आत्मा का धर्म है—अटल रहना निश्चल

यानी प्रवास करना, एक गति से दूसरी गति मे जाना। इसलिए आत्मा प्रवासी है। अनेक भवो की यात्रा करते-करते यात्री बना जीव सुसस्कार लेता है। जिस प्रकार बाल्यावस्था के सस्कार बडी उम्र मे सुदृढ बनकर व्यक्त होते हैं, उसी प्रकार कितने ही मनुष्य मे जो सस्कार दृढ होते हैं, वे दूसरे भव मे कोई विशिष्ट कारण प्राप्त होने पर व्यक्त होते हैं।

प्रसिद्ध कवि कालिदास ने कहा है—'प्रपेदिर प्राक्तान जन्म विद्या' जैसे शरद ऋतु आने पर हस श्रेणि स्वय गगाजल मे आ जाती है, रात्रि होने पर औषधियाँ स्वय चमकने लगती हैं, उसी प्रकार समय आने पर प्राक्तन ज म विद्या अर्थात् पूर्व जन्म के सस्कार (शक्ति) जीव मे प्रकट होते हैं।

विश्व के प्रत्येक कोने से पूव ज म के अनेक उदाहरण उपलब्ध हुए हैं। जयपुर यूनिवर्सिटी के प्रतीन्द्रिय सशोधन विभाग (baraphysiological research) के मुख्य अधिकारी डॉ बेनर्जी पुनज म पर वैज्ञानिक रीति से सशोधन कर रहे हैं। विश्व भर मे से सैकडो पुनर्जन्म के किस्से ज्ञात हुए हैं और वैज्ञानिक पद्धति से उसका सशोधन किया है। पूवज म को कहने वाले मे एक सत्रह वर्षीय अरबी युवक था। गरीब घर मे उसका ज म हुआ था। उसका कोई नाम रखा गया। उसकी माता को स्वप्न मे बालक ने नेसीप नाम रखने के लिए कहा। बडा होने पर बाल पूर्वज म की बातें करने लगा। उसने कहा मेरा पूव का नाम नेसीप बुडाक था। मेरा घर मरसीन गाव में था। पत्नी का नाम जहेरा था। अहमद रेकली के साथ लडते समय मैं मारा गया। उसने मुझे हसिए से मारा।

जब उस लडके को मरसीन गाँव मे ले गए तो उसने अपनी पत्नी और लडके को पहचान लिया, लेकिन छोटी लडकी को नही पहचान सका क्योंकि वह उसकी मृत्यु के बाद पैदा हुई थी। उसकी सत्यता का निश्चय करने के लिए उसकी पत्नी जहेरा को कोई बात पूछने को कहा गया, तब उसने कहा कि एक बार झगडे में गुस्से होकर पैर पर चाकू मारा था। उसने चाकू का निशान भी बतलाया और यह बात सत्य साबित हुई।

द्वितीय उदाहरण –दो जन्मो की कहानी कहती हुई स्वर्णलता –छतरपुर के इन्सपेक्टर श्री मनोहरलाल मिश्र की पुत्री स्वणलता अपने दो पूव जन्मो की कहानी कहती है।

एक दिन स्वर्णलता को लेकर मिश्रजी जबलपुर गए, तो चाय पानी के लिए होटल की तलाश करने लगे। इतने मे ही एक छोटी होटल देखकर स्वणलता बोल उठी पिताजी यह तो अपनी होटल है। इसी मे नाश्ता वगैरह करें। पुत्री की बात सुनकर मिश्रजी आश्चर्य चकित हो गए और सोचने लगे—कही यह पागल तो नही हो गयी है? हम तो यहाँ प्रवासी के रूप मे आये हैं। जान-पहचान कैसी? अपनी होटल कैसे? स्वर्णलता बेपरवाह होकर होटल मे चली गयी और पूवज म के छोट भाई हरिप्रसाद से कहने लगी—हरि, मुझे पीने के लिए पानी दे। बहुत प्यास लगी है।

एक अनजान लडकी से अपना नाम सुनकर हरिप्रसाद आश्चयचकित हो गया। उसे आश्चर्यचकित देखकर स्वणलता ने कहा —मुझे पहचानते नही? मैं तेरी बडी बहन किशोरी हूँ। हरिप्रसाद ऐसा सुनकर पूरे परिवार को बुला ले आया। स्वर्णलता ने सन् १६३६ तक के सब पारिवारिक सदस्यों के नाम सुनाये और बचपन मे भाइया को जिन जिन नामो से बुलाती थी, वे नाम भी सुनाए। उसने अपने तीन पुत्रो और दो पुत्रियो को पहचान लिया। एक पुत्र ने अपना नाम झूठा बताया, तब स्वणलता बोल उठी, माता के सामने असत्य बोलते हुए शम नहीं आती?

बाद में उसके पूवजन्म के पति चितामणि पाडे आये, तब उससे पूछा गया कि ये कौन हैं?

दस साल की लड़की ने शर्म से झुककर कहा :— वे ही हैं। कहने की जरूरत नहीं। जिनके साथ मेरी शादी हुई थी। एक पालकी में बैठकर मैं ससुराल जा रही थी और स्वामीनाथ अश्व पर बैठे थे। मार्ग में घोड़ा शरारती बन गया। उसने चार आदमियों को कुचल डाला और स्वामीनाथ को गिरा दिया। स्वामीनाथ को बहुत बड़ी चोट लगी। एक मास तक बीमार रहे। ऐसी बातें सुनकर सब लोग और उसके पिता श्री मनोहरलाल भी आश्चर्यचकित हो गये।

लड़की की परीक्षा करने के लिए सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री द्वारिकाप्रसाद, प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री मोहनलाल पारा और गंगापुर के विख्यात मानसशास्त्री श्री एच. एन. बेनर्जी आये थे। स्वर्णलता की परीक्षा करने के बाद उन लोगों ने निर्णय दिया कि इस लड़की को पूर्वजन्म की सब बातें याद हैं।

दूसरे भव की कहानी : लड़की ने आगे भी बताया—ई. सं. १९३९ मे मेरी मृत्यु हुई। इससे पहले जन्म मे मैंने सील्हर आसाम में जन्म लिया था। वहां मेरे घर में गीत गाने का धंधा चलता था। लड़की ने आसामी भाषा में दो गीत सुनाए और कुछ सम्बन्धियों के नाम भी बताए। आगे बताया—नौ साल की उम्र में गिर जाने से मेरी मृत्यु हुई और बाद में इस घर मे जन्म लिया है।

इसके दूसरे जन्म की बात सत्य है या असत्य, इसको सिद्ध करने के लिए आसाम ले जाने की तैयारी कर रहे है। रक्षा बंधन के दिन इस ९ वर्ष की लड़की ने अपने पूर्वजन्म के वयोवृद्ध बंधुओं को राखी बांधी।

विद्वानों के कथनानुसार आत्मा अमर है और अलग-अलग योनियों में जन्म धारण करती है। इस मान्यता का जवाब इस लड़की के दो जन्मों की कहानी देती है।

अभी भी यह लड़की जबलपुर में है। उसके इस जन्म के माता-पिता भी सपरिवार जबलपुर आ गये है। लड़की को देखने के लिए बहुत से लोग मनोहरलाल मिश्र के निवास स्थान को आते है।

(जनशक्ति ता० २२-८-५९ रविवार)

पूर्वजन्म के दृढ़ संस्कार :

१. **मोंगटून :** सन् १९२० जनवरी महीने में दक्षिण बर्मा के 'मिगस' गांव में एक बालक ने जन्म लिया। उसका नाम था मोंगटून। यह बालक जब साढ़े चार साल का हुआ, तब देही और देह, चेतन और जड़, तम और ज्योति आदि उच्च दार्शनिक विषयों पर तात्त्विक और मार्मिक प्रवचन देने लगा। उसके वक्तृत्व की चर्चा लोगो के मुँह पर रहती—उसके यश की सौरभ सारे बर्मा में फैल गयी। उसके प्रवचन सुनकर लोग विस्मय-विमुग्ध हो जाते थे। अनेक पंडित लोग भी उसका वक्तृत्व सुनने के लिए आते थे। एक दिन प्रसिद्ध 'उजोंग' मठ के अध्यक्ष स्थविर भिक्षु उस बालक की यशोगाथा सुनकर 'मिगस' गांव में आये और इस छोटे से बालक की अद्भुत वक्तृत्व-कला, सूक्ष्म विश्लेषण, मार्मिक विवेचन और विचारधारा से वे बहुत प्रभावित हुए। बाद में बर्मा देश के अनेक प्रसिद्ध केन्द्रों मे यह बालक प्रभावपूर्ण प्रवचन देने लगा।

२. **लुई लिकिन :** वाशिंगटन में सन् १९२० नवम्बर मास में एक बालक ने जन्म धारण किया था। उसका नाम था लुई लिकिन। इस बालक के साथ भी पूर्वजन्म के दृढ़ संस्कार आए थे। तीन साल की छोटी सी उम्र में भी वो 'पिन' पियानो आदि कठिन वाद्य भी सुगमता से बजा लेता था। प्रसिद्ध संगीताचार्य 'प्रेडेरिक' ने उसकी अद्भुत कला शक्ति को देखकर उसे एक भेंट दी, उस पर लिखा था, "अद्भुत बालक लुईस लिकिन के लिए उपहार।"

इस प्रकार "गर्भ[illegible] विद्या के उदाहरण,

पूर्वजन्म को साबित करने वाले दो दृष्टात पूर्वजन्म के साथ सस्कार लाने वाले किस्से तथा पुनर्जन्म-वाद की सिद्धि अनेक दशनो से एव पाश्चात्य विचारधारा से पढकर—आपके दिल मे अवश्य पुनर्जन्म की सत्यता की बात बैठ गयी होगी।

पूर्वजन्म से विशिष्ट ज्ञान लेकर आने वाली सरोजबाला

दाहोद (गुजरात) गाँव मे ६।। साल की बालिका कु० सरोजबाला ने तीन दिन मे हजारो मानव समुदाय के सामने वेद-पुराण, रामायण, गीता, महाभारत, उपनिषद्, श्रुति, स्मृति आदि का बिना पुस्तक पारायण कर लोगो को आश्चर्य-चकित और मत्रमुग्ध कर दिया।

सरोजबाला आखिर तो बालिका है न? जैसे ही व्यास पीठ से उतरती है कि तुरन्त बालको के साथ खेलने चली जाती है। उसके पिता श्री श्यामचरणजी राजस्थान के निवासी हैं। अभी सूरत मे रहते हैं। सरोजबाला का जन्म १-११-१९५७ को हुआ। जब वह २।। साल की हुई तब वह कहती थी की पूवजन्म मे राजस्थान के एक आश्रम मे एक ब्राह्मण के यहाँ मेरा जन्म हुआ था। इस बात पर उसके पिताजी ने कुछ भी ध्यान नही दिया। लेकिन थोडे दिन के बाद सरोजबाला अपने मुँह से गायत्री के १५ मत्र बोल गयी। इससे उसके पिताजी को आश्चर्य हुआ कि सरोजबाला को मैंने सिर्फ अक्षर ज्ञान दिया है। अभी तक स्कूल मे भी अध्ययन के लिए भेजा नही है।

भारत के राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसाद से जब सरोजबाला की भेंट हुई तब कई पडित उपस्थित थे और सब श्लोक बोल रहे थे। लेकिन उच्चारण शुद्ध न होने से सरोजबाला ने कितनी ही गलतियाँ निकाली और भूलें सुधार दी।

तदनन्तर अलग-अलग जगह पर रामायण, गीता, महाभारत, उपनिषद् पर अस्खलित गति से प्रवचन देती है।

(सदेश २७ ७-७७)

इस प्रकार 'पुनर्जन्म' का निबन्ध पढकर आत्मा की अमरता ज्ञात हो जाती है। अत आत्मा का पुनर्जन्म है। आत्मा पुण्य-पाप साथ मे लेके जाती है। तो अब से आप पुण्य का कार्य करेंगे और पाप प्रवृत्तियो का त्याग करेंगे—ऐसी अभिलाषा के साथ। ●

जो दूसरो को छोटा समझता है, दुनिया उसे छोटा समझती है। जैसे पर्वत पर स्थित व्यक्ति दूसरो को छोटा समझता है लेकिन वो यह भूल जाता है कि स्थित लोग भी उसे 'छोटा' ही देख रहे हैं।

सुसस्कारो व सद्गुणो से व्यक्ति महान् बनता है।

शरणागति, दुष्कृत गर्हा, सुकृत अनुमोदना

—पू. मुनिश्री कलाप्रभ विजयजी
जयपुर

जीवन मे शांति प्राप्त करने के लिए
मरण मे समाधि प्राप्त करने के लिए
परलोक में सद्गति के भागी बनने के लिए
परम्परा से शिवगति (मोक्ष) के अधिकारी बनने के लिए

जिनेश्वर भगवंतों ने तीन अनमोल साधन बताये हैं। तीनो साधनो का उपयोग प्रतिदिन तीन बार त्रि-संध्या मे मन की एकाग्रतापूर्वक करना अति आवश्यक है।

'शरणागति'

यह संसार अशरणभूत है। संसार के सर्व पदार्थ अशरणभूत है, और ससार के जितने भी रिश्ते-नाते हैं वे सभी अशरणभूत हैं। अशरणभूत तत्त्वों को शरणभूत मानने की कोशिश करना, प्रकृति का एक बड़ा भारी अपराध है।

हमारा अनन्त का यह इतिहास है, आज तक हम यह अपराध करते आये हैं, यह अपराध के सजा स्वरूप हमको यह अनन्त दुःखमय यातनामय चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करना पड़ा है।

हमारे अनन्तकाल के परिभ्रमण मे हमारी अशरण दशा ही हेतुभूत बनी है।

भयानक अशरण दशा से मुक्त होने के लिये जगत में जो शरणभूत तत्त्व हैं उनकी शरणागति स्वीकारना चाहिये।

अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म।

ये चार चीज सर्वोत्तम है, मंगलभूत और शरणभूत हैं। उनकी बिना शर्त हार्दिक शरणागति से शरणागत के क्लिष्ट कर्म और दुष्ट वासनायें नष्ट होती हैं, तथा शरणागत की सर्वप्रकार से रक्षा होती है।

शरण्य की शरणागति, शरणागत को शरण्य रूप बनाती है।

दुष्कृत गर्हा

जीव को सबसे अधिक राग स्वयं पर होता है। उस राग के कारण स्वयं मे निहित अनन्तानन्त दोषों का दर्शन नही होता है। स्वयं का राग दूसरो के प्रति द्वेष तिरस्कार पैदा करता है। इसी दोष के प्रभाव से गुण दर्शन नही होता है।

आज तक हमारी दूसरे के दोषों का निरीक्षण करने उनकी निंदा और टीका करने की प्रवृत्ति रही। इस प्रवृत्ति से हमारे में रहे हुए दोष पुष्ट बने।

स्व-प्रशंसा और पर-निंदा के पाप ने ही हमारे जीवन में अनेक पापों को प्रवेश दिया है। महानुभाव! अज्ञानवश जो कुछ होनहार था सो हुआ। अब तो सर्वगुण सम्पन्न अरिहंतादि भगवंतो का शरण स्वीकार कर जीवन में जो कुछ भी दुष्कृत हुए है, उन सब की हार्दिक निंदा करें और

निर्णय करें कि ऐसी प्रवृत्ति नही करूगा, जिससे मेरा आत्म-जीवन मलीन बने।

स्वय को दुष्कृतो की गर्हा,
जीवन को निर्मल बनाती है।
दूसरे के दुष्कृतो की गर्हा,
जीवन को मलीन बनाती है।

सुकृत अनुमोदना

सत्काय और सद्गुण की अनुमोदना, गुणानुराग का स्वरूप है।

गुणानुराग, गुण प्राप्ति का अतिसुन्दर उपाय है।

गुणानुराग बिना वास्तविक रूप से सुकृत की अनुमोदना नही है।

स्वय के सुकृत सत्कार्य की वारवार अनुमोदना करके अन्य के सर्व सुकृतो की अनुमोदना प्रशसा करनी चाहिए।

सुकृत अनुमोदना—सुकृत के कार्य करने मे प्रेरणा प्रदान करती है और पुण्य को पुष्ट करती है।

इस अनन्त ससार मे सद्गुण और सुकृत के निधान समान श्री अरिहतादि पच परमेष्ठि भगवत और अन्य पुण्यात्माओ ने जो कुछ भी सुकृत किया है उन सब की अन्त करण पूर्वक अनुमोदना करो, मानसिक अहोभाव व्यक्त करो।

गुणानुराग पूर्वक की गई सुकृत अनुमोदना से गुणी बनने की योग्यता विकसित होती है।

गुणी बनना है, तो स्व-पर सुकृत की हार्दिक अनुमोदना करो।

"साधर्मिक"

—सुशील कुमार छजलानी

अबतो मशाल कुछ ऐसी जलाई जाए—
जिसे साधर्मिक को साधर्मिक से मिलने की राह बताई जाए।
जिसकी खुश्बू से महक उठे पडौसी का घर
फूल कुछ ऐसा उगाया जाय
प्यार मे कमी आई क्यो कर
ये समझने के लिए हर अंधेरे को ज्ञान के
उजाले में बुलाया जाए—
धर्म के वास्ते हँसकर चढे जो सूली पर
उन धर्म वीरो को जरा फिर से जगाया जाए—
तेरे दुख दर्द का असर हो मुझ पर कुछ ऐसा
तू रहे भूखा तो मुझ से भी ना खाया जाए
जिस्म दो होकर भी एक दो अपने ऐसे
तेरा आसू मेरी पलको से उठाया जाए—
भाई मेरे जीवन दो कुछ ऐसा
जो पूर्ण कला के साथ जिया जाए।

धर्म की नींव

□ पूज्य मुनि श्री कीर्तिचन्द्रविजयजी, व्यावर

सुवर्ण कलशो से चमकता गगनचुम्वी भवन (प्रासाद) धरती में गहराई तक उतरती हुई सुदृढ़ नींव पर ही खड़ा होता है। विना नींव का कहीं महल होता है ? हवा मे फेकी गई ईंट महल का निर्माण नही कर सकती, अपितु वापिस लौटकर निर्माता की जीवन लीला को समाप्त कर सकती है।

धर्म का प्रासाद मैत्री भाव पर ही स्थित रह सकता है। मैत्री विना का धर्म हवा में ईंट फेंकने के सदृश है। जिससे आत्म-कल्याण तो दूर रहा—बल्कि आत्मा मे और नई विकृतियाँ उपस्थित कर देता है।

समस्त जगत के प्राणी प्रेम चाहते है—इस दुनिया का अस्तित्व प्रेम पर ही निर्भर है। चाहे छोटा प्राणी हो या बड़ा—एक दूसरे के आधार पर ही अपनी हस्ती रखते हैं। यह मत समझना कि छोटा प्राणी क्या कर सकता है, एक छोटी सी चीटी भी महाकाय गजराज को परलोक का भागी बना देती है।

अतः किसी भी प्राणी को दुःख पहुँचाना, उसे तिरस्कृत करना, अपने स्वयं के दुःख को मोल लेना है।

आज मानव अपने सुख के पीछे अनेक प्राणियों की जीवन-लीला समाप्त कर रहा है। वो चाहता है मैं सुखी बनूंगा, किन्तु बनता दुःखी है।

किसी के सुख को छीनकर कोई सुखी बन सकता है ?

मैत्री-भाव को नष्ट करते ही, करुणा भाव नष्ट हो जाता है। और करुणा भाव नष्ट होने पर अन्य प्राणियों के सुख-दुःख का विचार ही नहीं आता....। इससे यह साबित होता है कि मैत्री-भाव सर्वगुणों को प्रकट करने का उपाय है।

मैत्री-भाव का अर्थ बहुत व्यापक है। स्व को छोड़कर सर्व का विचार करना। स्व को सर्व में विलीन कर देना। जगत् का कोई भी प्राणी पाप न करे, कोई भी प्राणी दुःख का भाजन न बने—समस्त प्राणी दुःख से मुक्त हो जायें ? इस प्रकार का चिन्तन, मनन एवं व्यवहार वह है मैत्री—इस मैत्री भावना को मन का उदात्त रूप कहा गया है।

जगत के हरेक जीवात्मा मानव मात्र से एक बड़ी अपेक्षा रखते हैं वो है अभयदान की....! प्रत्येक प्राणी की दृष्टि विकसित हुये मानव पर प्रायः रहती है, वे मानव से रक्षा चाहते है। क्या मानव उनका रक्षक बन सकता है ? बल्कि मानव का कर्तव्य है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सारा प्राणी मात्र का रक्षण करे ? पर मैत्री-भाव से पूर्ण जीवन से ही रक्षक बन सकता है। मैत्री बिना की करुणा, वो करुणा नहीं परन्तु क्रूरता का ही रूप है।

आज चारो तरफ भयकर द्वेष व ईर्ष्या वैर झेर की दावाग्नि सुलग रही है—कौन शीतल जल का झरना बनेगा ? है कोई ऐसा अजात शत्रु—मानव, जो प्राणी मात्र को गले लगा सके ?

आज ऐसे मानव की आवश्यकता है जो अपने भीतर सर्व को स्थान दे सके—एक दूसरे के पीछे अपना सर्वस्व का योगदान दे सके ।

सच्चा मित्र वो ही है जो अपने मित्र के पीछे सर्वस्व का त्याग कर दे । त्याग के बिना मैत्री टिक नही सकती । दूध व पानी मे जैसी मित्रता होती है वैसी ही मैत्री जगत् के जीवो के प्रति अनिवार्य है ।

दूध व पानी की मैत्री कैसी भव्य है ?

दूध अपना उज्ज्वल स्वरूप पानी को दे देता है और पानी अपने अस्तित्व को दूध मे विलोपन कर, दोनो एक बन जाते हैं । दूध वह दूध न रहा और पानी वह पानी न रहा !

मैत्री का अर्थ ही एकता है—एक मे भेद नही होता—भिन्नपना नही होता । दूध जब चूल्हे पर चढकर गर्म होता है तब पानी जलने लगता है क्योकि पानी सोचता है कि दूध ने मुझे अपना रग दिया तो मुझे उसके लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर देना चाहिये, और पानी इसी मैत्री-भाव के अनुरूप धीरे-धीरे जलकर अपने स्वरूप को न्यौछावर कर देता है, तब दूध सोचता है मेरे लिये पानी ने अपने प्राण छोड दिये—तो मुझे भी उसके पीछे जल कर मर जाना चाहिये ? फिर वह उफन कर अग्नि-स्नान करने लगता है ।

तब मानव क्या करता है, ? दूध मे थोडा पानी डालता है । मित्र को पाते ही दूध का उफान शान्त हो जाता है । मानव तुरन्त उसे नीचे उतार लेता है ।

यह है जड की मैत्री ? जड जैसी वस्तु भी मैत्री-भाव को पाने के बाद सर्वस्व अर्पण करने के लिये तत्पर बनता है—तो अपन तो चेतन कहलाते हैं ?

अपन को विचार करने की आवश्यकता है कि अपने मे मैत्री-भाव आया है ? कभी ऐसी त्याग भावना हृदय मे पैदा हुई है ?

इसलिये ज्ञानी पुरुषो ने कहा—धर्म का प्रथम सोपान 'धर्म की नींव' मैत्री-भाव है ।

> धर्मकल्पद्रुमस्येता, मूल मैत्र्यादि भावना ।
> यैर्न ज्ञाता न चाभ्यस्ता स तेषामति दुर्लभ ॥

अन्य धर्मावलम्बी वेद एव उपनिषद् मे भी इसी सकल्प को व्यक्त किया है—'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' ।

साराश यह है कि सब हमारे मित्र हैं और हम सबके मित्र हैं । Cardinal New man ने इस बात को अपनी भाषा मे इस प्रकार पुष्ट किया है —A gentle man is one, who never inflicts pain on others

यानी हमारी किसी भी प्रवृत्ति से किसी भी प्राणी को पीडा न हो, इसी को चरितार्थ किया है—'आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् ।'

तात्पर्य यह है कि अपने मन, वचन व काया का व्यापार निष्कपट हो, जीवन की हर प्रवृत्ति मे चाहे आर्थिक, चाहे सामाजिक, चाहे पारिवारिक, चाहे राष्ट्रीय, चाहे अन्तर्राष्ट्रीय—एक ही लक्ष्य रह जाय कि कोई भी कृत्य ऐसा न हो कि जिसम सहिष्णुता एव त्याग का अभाव हो, और इसके फलस्वरूप आदान-प्रदान, भाषा अथवा अकर्मण्यता के कारण किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से क्षति पहुँचे या उसके हृदय को आघात हो ।

सच्चे मित्र के लिये संत तुलसीदासजी ने कहा—

"जे न मित्र हो हि दुखारि,
तिन ही विलोकत पातक भारी।"

इसी का आशय अंग्रेजी कहावत में है—

A friend in need, is a friend indeed.

जिस प्रकार मैत्री भावना का प्रादुर्भाव व विकास होगा वैसे ही वैसे चोरी, झूंठ, हिंसा, प्रतिशोध, कलह, क्रोध, ईर्ष्या आदि का विसर्जन हो जायेगा—और एक राष्ट्र में यह राष्ट्रीय भावना व्याप्त हो जाय तो दूसरे राष्ट्र या विश्व के कोई भी राष्ट्र के प्रति, प्रतिस्पर्धा या वैमनस्य का कोई स्थान ही नही रहेगा। यदि उत्तरोत्तर जगत् में अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री व सद्भावना आच्छादित हो जाय तो विनाशकारी शस्त्रों व इसके कारण हिंसा व एक दूसरे के प्रति अविश्वास का वातावरण समाप्त ही हो जायेगा। सभी राष्ट्र एक दूसरे के प्रति सहयोगी होकर विकास मार्ग को प्रशस्त करेंगे। हर व्यक्ति व प्राणी सुख शान्ति मे भय रहित मानव जीवन को सार्थक करेंगे, यानी प्राणीमात्र को अभय प्रदान होगा। "धर्म की नींव" दृढ़ मानवीय शिला पर स्थापित होगी कि पृथ्वी स्वर्ग बन जायगी और हर व्यक्ति एकमात्र इस विचारधारा पर होगा—

शिवमस्तु सर्वजगतः
परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तुनाशं
सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥

अतः जब मनुष्य के मन में मैत्री भावना अंकुरित होगी, तब उसमे व्रत जप, तप, नियम त्याग आदि के बीज सहजता व शीघ्रता से प्रस्फुटित होंगे।

अतः हम सब प्रतिज्ञा करें कि इस दृष्टिकोण को अपना कर, विकसित कर व दृढ़ता से पालन कर जीवन में आनन्द, अभय, आह्लाद प्राप्त करें, और इस प्रकार "धर्म की नींव" को दृढ़तर स्थापित कर मानव जन्म सार्थक बनायें कि अधिकतम प्राणियों का कल्याण हो, मंगल हो और सर्व दोषों से विमुक्त बनकर, भव भ्रमण का अन्त लाते हुये शाश्वत सुख के भोक्ता बनें।

☐ ☐ ☐

'अति दर्पे हता लंका' अर्थात् अधिक अभिमान करने से रावण तथा लंका का नाश हुआ। दुर्योधन तथा कर्ण का भी अन्त हुआ। सिकन्दर महान् भी इस संसार से चल बसा। अभिमानी का सिर हमेशा नीचा होता है अतः नम्रता को जीवन में स्थान देना चाहिए।

× × ×

क्षीणे पुण्ये मर्त्यं लोक—'मुपविशंति' देवता भी सुखोपभोग के द्वारा अपने महान् पुण्य का क्षय (अल्पता) होने के बाद मर्त्य लोक में जन्म लेते हैं। अतः स्वर्ग भी अन्तिम लक्ष्य नहीं है बल्कि परिणामतः दुःख रूप ही है।

दीक्षा की महत्ता

□ पू मुनिश्री पूर्णचन्द्र विजयजी
जयपुर

वर्तमान जगत् मे सर्वश्रेष्ठ कौन ? सबसे सुखी और आनंदित कौन ? आज दुनिया की तीन अरब मानव की सख्या मे किसका भाग्य अधिक है ? स्पष्ट रूप से इन प्रश्नों का उत्तर कहा जाय तो जैन दीक्षित साधु साध्वी ही ऐसे हो सकते हैं।

गहराई से सोचेंगे तो ज्ञात होगा कि दीक्षा कोई सामान्य वस्तु नही, वरन् विश्व की श्रेष्ठ अमूल्य वस्तु है।

दीक्षा का स्वरूप कहा जाय तो वह एक अतर की महान् खोज है। अतर की दुनिया के द्वार का उद्घाटन है। बाह्य भावो का विलीनीकरण है। विशुद्ध आचारो का स्रोत है। आतरिक चेतना के निर्मल भावो का प्रवाह है। समग्र विश्व के साथ प्रेम और स्नेह का तादात्म्य सबध है। समग्र जीवो की सुरक्षा का प्रबल साधन है और भगवान अरिहत देव का मूर्तिमान् संदेश है।

ससार मे आज जहाँ चारो ओर अधकार फैल रहा है, दु ख का दावानल सुलग रहा है, हिंसा और वैर विरोध की ज्वालायें भडक रही हैं, राजकीय, आर्थिक एव सामाजिक अनेक समस्याएँ मानव के भीतरी और बाह्य जीवन को तितर-बितर कर रही है, वहा यह दीक्षा का पुनीत पथ मानव के लिए महान् आशीर्वाद रूप बनता है। उस माग पर जो व्यक्ति चलता है, वह सुख, शाति और आनन्द का स्वामी बन जाता है। ससार की विषमता का उस पर कुछ असर नही हो सकता। वह मग्न बन जाता है, अन्तर मे। बहार क्या है, उसके लिये सब Black out हो जाता है और जैसे योगीराज आनन्दघन ने कहा—"आतम अनुभव रस के रसिया, उतरे न कबहु खुमारी" वैसा उसका जीवन बन जाता है।

इतना ही नही, दीक्षित व्यक्ति यदि परमात्म-कथित साधना मे लीन बन जाय तो वह अपनी आत्मा मे सूक्ष्म शक्तियो का एक महान् आविष्कार कर सकता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गतिशील होता उसका जीवन सारे विश्व को आदोलित कर सकता है। उसमे एक ताकत पैदा होती है, ऊर्जा उत्पन्न होती है, ध्यान की धारा प्रवाहित होती है, जिससे न केवल उसकी आत्मा ऊपर उठती है, बल्कि दूसरी अनेक भव्य आत्माएँ आत्म कल्याण की ओर प्रगतिशील बनती है। क्योकि दीक्षित जो कुछ चिंतन करता है, ध्यान करता है, उसका प्रतिभाव और प्रतिबिंब योग्य आत्मा मे अवश्य पडता है। उसके चिन्तन का मुख्य आधार भी जगत के सब प्राणियो का कल्याण हो, ऐसी मगल कामना पर ही होता है। ऐसे देखा जाय तो साधु-जीवन का मुख्य लक्षण भी शास्त्रो मे यही बताया गया है।

श्री दशवैकालिक सूत्र मे कहा है कि—"मुनि

सर्व प्राणियों में अपनी ही आत्मा देखता है, सभी आत्मा के साथ अपने जैसा ही व्यवहार करता है, और आस्रवों से रहित होकर जितेन्द्रिय बन कर, वह पाप कर्म का बंध नहीं करता है।"

१४४४ ग्रन्थ के प्रणेता पूज्यपाद आचार्य श्री हरिभद्र सूरिजी ने भी अपने 'ललित विस्तरा' ग्रन्थ में साधु के लक्षण की व्याख्या में बताया है कि—

"सामायिक आदि विशुद्ध क्रिया से उत्पन्न हुआ सकल सत्त्व प्राणियों का हित आशय रूप अमृत परिणाम ही साधु धर्म है।" कैसी सुन्दर व्याख्या है। इससे कहा जाय कि सचमुच साधु जीवन शांत-शीतल सरोवर ही है, जिसके पास संसार का संतप्त मानव भी शीतल बन जाता है और विषय कषाय की भयंकर आग एवं दुःख की ज्वाला को शान्त बना सकता है।

भगवान तीर्थंकर ने प्रकाशित की हुई यह दीक्षा समय-समय पर भव्य आत्माएँ ग्रहण करती रहती हैं, और विश्व इससे कल्याणमय बनता रहता है।

जिन शासन के स्वर्णिम इतिहास को देखेंगे तो ज्ञात होगा कि दीक्षा कितनी व्यापक और विस्तृत थी। इतिहास साक्षी है कि भूतकाल मे हजारों, लाखों, असंख्य राजाओं ने भी यह दीक्षा ग्रहण की थी। अक्सर पहले काल में यह प्रणाली रही थी कि राजा अपनी संतान को राज्य गद्दी के ऊपर स्थापित करके दीक्षा या संन्यास स्वरूप वैराग्य मार्ग ग्रहण कर लें। केवल भ० श्री आदिनाथ और भ० श्री अजितनाथ के बीच के काल मे असंख्य राजाओं की राज्य परम्परा चली और उन सभी ने दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष या स्वर्गपद की प्राप्ति की।

पूर्व के काल में जब किसी सामान्य निमित्त से भी वैराग्य का प्रादुर्भाव हो जाता तो राजा या राजकुमार, सेठ या श्रीमंत पुत्र सैकड़ों के साथ संसार की मोह माया और ममता के बंधन को काट कर सम्पूर्ण त्यागमय जीवन में लीन बन जाते थे। जम्बूकुमार, थावच्चाकुमार, धन्ना शालिभद्र आदि के हजारों दृष्टांत आज भी हमें यह महान् आदर्श के प्रति नतमस्तक बनाये बिना नहीं रहते। हम संवेदनशील बन जाते हैं। हमारी चेतना कुछ गहराई में डूब जाती है और विचार करती है कि वास्तव में यह संसार क्या है? क्या सार है यह संसार में? आज तक मैंने क्या प्राप्त किया? क्या संसार में मुझे सुख और शान्ति मिली? जब हम विचार के सागर में डूब जाते हैं तब हमें प्रतीत होता है कि संसार और कुछ नही, बल्कि श्मशान ही है, कि जहाँ शोक की अग्नि सदैव प्रदीप्त बन रही है, जहाँ अपयश की राख चारों ओर फैल रही है, जहाँ काम-वासना रूप उल्लू निरन्तर कटु शब्द फेंक रहा है, जहाँ क्रोध रूप महागिद्ध पक्षी उड़ रहा है और जहाँ अरति रूप चपल लोमड़ी इधर-उधर भटक रही है। ऐसे श्मशान रूप संसार में क्या रमणीयता और क्या सौंदर्य हो सकता है? अन्यथा हजारों नरवीरों, चक्रवर्ती और राजा इस संसार का त्याग क्यों करते? सुख, शांति और आनन्द वस्तु की अपेक्षा और पदार्थों की प्राप्ति मे नहीं है, बल्कि उनके त्याग में है, निःस्पृहता और निरपेक्षता में है। इसलिए तो आइन्स्टाइन जैसे भौतिक वैज्ञानिक को भी कहना पड़ा कि—"Do not espect anything from any body"—अगर सुख चाहिए तो किसी से किसी की अपेक्षा और इच्छा मत रखो।

इस प्रकार सांसारिक पदार्थों की अनिच्छा एवं वैराग्य भाव को दृढ़ बना कर ही दीक्षा अंगीकार की जाती है और आत्मा के वास्तविक आनन्द की अनुभूति इससे हो सकती है।

सभी के हृदय में यद्यपि हम इसको न भी ले सकें, फिर भी हमारी आन्तरिक अभिलाषा तो

इसी की होनी चाहिए कि कब मैं सयम को स्वीकार करूगा। क्योकि शास्त्रो मे साधु धर्म की अभिलाषा रूप ही श्रावक धर्म कहा गया है। जिसके हृदय मे सयम के प्रति अनुराग और अभिलाषा नहीं है, वह श्रावक ही नही है।

हम यह सयम के प्रति अनुराग बढायें। यदि हम नही, तो भी हमारी सतान इस मार्ग पर वीर बनकर चलें, इस हेतु हम सदैव उन्हें प्रेरित करते रहेंगे यह शुभ सकल्प जिन शासन के प्रेमी को बहुत आवश्यक है। जिन शासन की यही परम सेवा है। जैन धर्म की प्रभावना और सस्कृति का सरक्षण भी तब ही होगा जब सैकडो की सख्या मे साधु और साध्वी अपने आचार मे सनिष्ठ बन कर भारत के हजारो गाव और नगरों मे जनता पर उपकार करेंगे। आज गुजरात की अपेक्षा दूसरे प्रदेशो मे जैन धर्म की प्रभावना इतनी नहीं हो रही है, धर्म मे भी जमानावाद बढ रहा है, प्राचीन भव्य मन्दिरो का भी विनाश हो रहा है, लोगो मे आस्था और जागृति कम हो रही है, इसका यही कारण है कि यहा के प्रदेशो मे से दीक्षा लेने वालो की सख्या बहुत कम हो गई। आज आवश्यकता है इस बात पर गहराई से सोचने की, और कुछ समर्पण करने की। हमारे पर जिन शासन का अनन्त ऋण तब ही कुछ उतर सकता है, जब हम या हमारी सतान इस मार्ग पर चलकर जिनशासन की परम सेवा और महान् प्रभावना करेंगे।

Life is a duty, perform it —अर्थात् जीवन एक कर्त्तव्य है, इसे दायित्व समझकर ठीक तरह से निभाना चाहिए।

•

The human heart never knows a state of rest,
Bad goes to worst, and better goes to Best

अर्थात् मानव का मन विश्रान्त नही हो सकता। वह शुभ या अशुभ विचार करता ही रहेगा। यदि हम इसे अच्छे विचारो से पवित्र बनाने मे असमर्थ रहे तो यह मन अपवित्र तो बन के ही रहेगा। अत 'काम की औषध काम'—इस सूक्ति को समझ कर शुभ कार्यों मे व्यस्त रहना चाहिए।

जिनशासन के गगन में

तर्क तारे हैं, श्रद्धा सूर्य है ।

□ श्री मुनीन्द्र, जयपुर

आज के युग का यदि सबसे बड़ा अभिशाप कोई है तो श्रद्धा का अभाव है। हाँ, यह बात सही है कि आज बुद्धि दिन-दिन बढ़ती जा रही है—मस्तिष्क विस्तृत होता जा रहा है और इसके फलस्वरूप विज्ञान अनेकानेक नये आविष्कार करने जा रहा है। पर मैं पूछता हूँ : श्रद्धा का क्या हुआ ? हृदय की क्या दशा हुई ?

बुद्धि का स्थान मस्तिष्क में है। श्रद्धा का स्थान हृदय में है। आज हमारी बुद्धि तो बहुत लम्बी-चौड़ी शायद सागर जितनी होने जा रही है, लेकिन हृदय अतीव संकीर्ण पानी के गड्ढे जैसा होने जा रहा है।

कल्पना कीजिए : वह आदमी कितना भद्दा लगता है जिसका मस्तक तो बड़ा—अति बड़ा है और हृदय बिल्कुल लकड़ी जैसा दुर्बल है ? क्या भीतरी स्वरूप में आज के आदमी की यही दशा नहीं हुई ?

बुद्धि जब विकसित होती है तब तर्क-शक्ति बढ़ती है। हृदय विकसित होता है तब ईश्वर के प्रति श्रद्धा, मानव और दूसरे सारे प्राणी जगत पर करुणा-दया और सहानुभूति बढ़ती है। आज तर्क तो बहुत है पर करुणा कहाँ है ? सहानुभूति कहाँ है ? आज [illegible] को किसी भी चीज की जरूरत है तो करुणा दया और प्रेम की जरूरत है।

आज चारों ओर हिंसा की आग भड़क उठी है। सारा देश—सारी दुनिया इसमें जल रही है। जहाँ देखो वहां तूफान ! हिंसा ! झूठ ! कपट !

कहाँ विश्वास करें ? कहाँ श्रद्धा रखें ? आदमी एक दूसरे से प्रेम से बात करने में डरता है—अविश्वास का पर्दा लगाकर ही बात करता है।

किसी कवि ने कहा है—

'अविश्वास ही अविश्वास बस दुनिया का मंत्र बना है,
भाई-भाई में दो टुकड़ों पर भीषण युद्ध ठना है।
मानवता बेचारी रोती क्रूर जीवन रचना है,
व्यवहारों के भीतर देखो कृत्रिमता का रंग कितना है ?'

अविश्वास ! अविश्वास ! और अविश्वास !

अश्रद्धा ! अश्रद्धा ! और अश्रद्धा !

प्रत्येक क्षेत्र में आदमी को शंका है, अश्रद्धा है। चाहे धार्मिक क्षेत्र हो, व्यावहारिक हो या सामाजिक। दूसरे की तो क्या बात करूँ ? अपने जीवन पर भी उसे श्रद्धा नहीं है। आदमी अपने जीवन पर श्रद्धालु नहीं है—[illegible] के लिए उत्सुक है—इससे बड़ा दुःखद समाचार और क्या हो सकता है ?

जापान में एक नगर के पास [illegible] बैठे थे। [illegible]

तत्त्वनानी ने चारो से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा 'इस दुनिया मे सबसे बडा सुखी कौन है ?'

जवाब देने वाले सामान्य नहीं थे। एक बडा धनाढ्य था। दूसरा महान् नेता था। तीसरा लोकप्रिय अभिनेता था व चौथा प्रसिद्ध न्यायाधीश था। चारो ने एक ही जवाब देकर कमाल कर दिया। रास्ते मे से एक ननामी पसार हो रही थी। चारो ने उस तरफ उँगली दिखाकर कहा 'इसमे सोया हुआ आदमी जगत का सबसे बडा सुखी है।'

इस उत्तर मे आज के युग-मानस का प्रतिबिम्ब है। वह सिर्फ जीने के लिए जी रहा है—जीने की कोई आशा नही है—जीवन मे कोई श्रद्धा नहीं है।

किसी चिन्तक ने कहा है We live because we can not die 'हम जी रहे हैं, क्योंकि हमम मरने की हिम्मत नही है।'

आह ! श्रद्धा के अभाव मे मानव की कैसी दुदशा ? जीवन से आदमी तब से ऊब गया है जबसे उसने धम की आशा छोड दी। ईश्वर से विश्वास हटा दिया। आत्मा, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक आदि मानने से इनकार कर दिया।

यह भारत देश बुनियादी रूप से धमप्रधान ही है। वह न कृषि प्रधान है, न उद्योग प्रधान। पर स्वाभाविक रूप से ही धर्मप्रधान ही रहा है। धम का मूल श्रद्धा है। विज्ञान का मूल बुद्धि है, तक है। श्रद्धा की वजह से पूव के देशों मे धम का विकास हुआ व शका की—तक की वजह से पश्चिम मे विनान का विकास हुआ। तो जिस श्रद्धा को हटाकर हम दु खी-दुखी हो रहे हैं, उस श्रद्धा को वापिस लानी होगी—धर्म प्रधान जीवन बनाना होगा।

मैं यह नही कहना चाहता हूँ कि बुद्धि व तक को हम बिलकुल छोड दें—श्रद्धा को ही आगे रखकर जीवन जियें। याद रहे कि जब तक को बिलकुल हटा दिया जाता है तब हमारी श्रद्धा अधश्रद्धा बन जाती है और जब हृदय से करुणा व प्रेम को हटा दिया जाता है केवल बुद्धि पर ही जीवन जीते हैं तब हम कोरे बुद्धिजीवी बन जाते हैं—सवेदनहीन हृदय के स्वामी।

तो बुद्धि और श्रद्धा दोनों का समकक्ष विकास होना चाहिए। ऐसा विकास बडे धर्माचाय व योगी मे ही होता है—ऐसा नहीं है। ऐसा विकास किसी विनानी मे भी हो सकता है। महान् विनानी आल्बर्ट आइस्टीन अगम्य ईश्वरीय महासत्ता के परम श्रद्धा से नतमस्तक था। जब वह किसी गणित के गहन उलझन मे पड जाता था—कोई उपाय नही मिलता था तब गॉड का 'g' बीच में लिख देता था। एक विनानी जिसका मस्तिष्क तक से ही भरा माना जाता है की भी ईश्वर के प्रति कितनी श्रद्धा ? और कमाल ! 'g' लिखने के बाद तुरन्त ही गाणितिक समाधान हो जाता था।

तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि तर्क व श्रद्धा दोनो का समान रूप से विकास होना चाहिए। लेकिन आज बुद्धि की जाल बहुत फैली हुई है, श्रद्धा को कोई पूछना तक नही। भले ही आज बुद्धि के विकास से विनान की अनेक नई-नई क्षितिजें खुलती दिख पडे पर मैं मानता हूँ कि अन्त मे हृदय की जीत है—श्रद्धा की ही विजय है।

बुद्धि की हजारो आँखें हैं। श्रद्धा की एक ही आख है। लेकिन फिर भी श्रद्धा सदा से विजयी बनी है। क्या हजारो सितारो को एक ही सूय हतप्रभ नहीं कर देता ? तर्क तारे हैं—श्रद्धा सूय है। श्रद्धाहीन बडे-बडे तार्किक इतिहास के पर्दे मे कहा गये—कोई पता नही। अल्प तर्क वाले किन्तु ईश्वर के प्रति परम श्रद्धा वाले अमर बन गये।

गीता मे ठीक ही कहा है—"श्रद्धावान लभते ज्ञान, सशयालुर्विनश्यति।"

आज विज्ञान तर्क के राह पर चल रहा है। तर्क की सहायता से वह ब्रह्मांड के अज्ञेय रहस्य को जानने के लिए उत्सुक है। पर केवल बुद्धि के सहारे ही चलते-चलते उसने समस्त मानवगण को उस आणविक महाविनाश के निकट ढकेल दिया है—जहां से बचना असम्भव नहीं तो दुःसम्भव तो जरूर हो गया है। क्या अब भी विज्ञान इस खतरनाक मार्ग से रुकेगा ? अब सारा विश्व उस युगपुरुष की प्रतीक्षा में है जो अपनी सिंहगर्जना से सारे संसार को हिला दे—विज्ञान की दौड़ को थाम ले। न मालूम वह स्वर्णिम समय कब आयेगा जब तर्क के तारे अस्त हो जायेंगे और पूर्व में से श्रद्धा का सूर्य उदित होगा ? पर एक बात निश्चित है कि अभी तर्क की रात्रि चल रही है, जिसमें करोड़ों नये-नये आविष्कार के तारे जनता को व्यामूढ़ बना रहे हैं। पर रात्रि समाप्त होगी ही सवेरा होगा ही। अभी सारा विश्व किसी महान् संक्रान्ति की पीड़ा में से गुजर रहा है। आबादी के प्रसव से पूर्व, संक्रान्ति की असह्य पीड़ा को तो झेलनी ही होगी। पर इस पीड़ा से घबराने की या निराश होने की जरूरत नहीं है। वर्षा की शीतलता प्राप्त करनी है तो असह्य गरमी की पीड़ा तो सहनी ही होगी।

जो हो सो हो। किसी युग पुरुष की प्रतीक्षा में हम निष्कर्मण्य होकर नहीं बैठ सकते। युगपुरुष के लिए पूर्व-भूमिका तो हमें ही तैयार करनी होगी।

तो हम पूर्ण श्रद्धा से बुद्धि को कह दें—बुद्धि ! अब तू रुक जा। तर्क ! तू तूफान बन्द करदे। हे प्रेममयी करुणा ! तू जागृत बन और तेरे अथाह प्रेम-प्रवाह से सारे संसार को आप्लावित करदे। हे श्रद्धा ! अब सवेरा हुआ तू उठ। तेरे दिव्य-प्रकाश से अन्धकार में डूबे हुए सारे विश्व को अलोकित करदे।

बुरे दिनों में ना भाइ और जाया कामा आता है।
फक्त अपना कमाया और बचाया काम आता है॥

× × ×

छोटी न समझो कभी इन चार चीजों को।
कर्ज को मर्ज को आग को अपने रकीबों को॥

× × ×

मैना ने 'मैं ना' कही तो मोल बढ़े दस बीस।
बकरे ने 'मैं मैं' कहा तो रोज कटा है शीश॥

× × ×

मजा भी आता है दुनिया से दिल लगाने में।
मजा भी मिलती है दुनिया से दिल लगाने में॥

× × ×

मत सता आसिम किसी को, मत किसी की आह ले।
दिल के दुःख जाने से उसके, आसमां हिल जाएगा॥

प्रलय काल याने छट्ठे आरे की भयंकरता

□ 'श्री पूर्णेन्दु'
जयपुर

मनुष्यो का निवास जहाँ सम्भव है, वह ढाई द्वीप भूमि कहलाती है। जम्बू द्वीप, घातकी खड और पुष्कराद्ध द्वीप यह ढाई द्वीप हैं। इन ढाई द्वीप मे पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह इस प्रकार १५ क्षेत्र हैं जो जैन भूगोल शास्त्रो मे कर्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह कर्मभूमि मे ही धम, कम, मोक्षगमन आदि सम्भव हो सकता है।

आज हम जहाँ हैं, वह है जम्बूद्वीप, जो एक लाख योजन प्रमाण विस्तृत है। उसमे भी हम तो भरत क्षेत्र मे ही हैं। इस भरत क्षेत्र म काल की व्यवस्था रूप छ आरे प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मे होते रहते हैं। अभी वर्तमान मे अवसर्पिणी काल चलता है। भगवान महावीर देव तक २४ तीर्थंकर इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे मे हो गये। महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद पचम आरा लग गया, जिसको दुषमा और कलिकाल भी कहते हैं। वतमान मे आज हम इसी कलिकाल रूप पचम आरे मे जी रहे हैं। यह पचम आरा २१००० वर्ष प्रमाण है।

इस पचम आरे मे तो दु ख सुख दोनो मिश्रित हैं, जबकि इसके बाद आने वाले छट्ठे आरे मे तो केवल दु ख, दु ख ही है। वह भी २१००० वर्ष प्रमाण होगा।

भगवान महावीर स्वामी ने श्री भगवती सूत्र मे कहा है कि जो व्यक्ति पचम आरे मे सुन्दर अनुकूलता प्राप्त होने पर भी अरिहत भगवान की पूजा, पच महाव्रतधारी गुरु के वदन, दर्शन, यथाशक्ति सामायिक प्रतिक्रमण, नवकारशी, एकासना, आयबिल, उपवास आदि व्रत और दीन दु खियों की सेवा, आदि पुण्य कार्य नहीं करते हैं तथा हिंसक कार्य, असत्य आचरण, व्यापार वगैरह में माया कपट, पर स्त्री गमन, शराब पान आदि दुष्ट कार्यों मे अपना जीवन समाप्त कर लेता है, उसके लिए दुर्गति के द्वार सदैव खुले हैं।

स्वय के स्वार्थ वश जो व्यक्ति हजारो लाखो जीवो को खत्म कर देता है, इसके बाद पश्चात्ताप भी न हो और हजारो जीवों के साथ कटुतापूर्ण व्यवहार कर वैर-विरोध की गाँठ मजबूत बनाता है, उसको उन कर्मों के कटुफल भुगतने के लिये छट्ठे आरे मे मनुष्य या तिर्यंच के रूप मे जन्म लेना बिल्कुल सभव है।

अति दु ख का वर्णन इसलिए है कि हमे ससार से कुछ वैराग्य भाव जागृत हो और अपने दोषो के प्रति नफरत पैदा हो। हम वर्तमान मे सामाजिक, राजकीय, आर्थिक परिस्थिति मे ही न डूब जायें, भविष्य का और परलोक का भी कुछ विचार करें। वर्तमान के पापमय जीवन से भविष्य मे

हमारी आत्मा की क्या हालत होगी, इस पर भी कुछ आत्म-संवेदन करें। ऐसा नहीं करेंगे और जागृत नही बनेंगे तो फिर हमे छट्ठे आरे जैसी दुर्गति में पड़ने से कौन बचाएगा ?

श्री गौतम स्वामी ने संसारी जीवों को वैराग्य प्राप्ति के लिए भगवान महावीर से समवसरण में ही प्रश्न किया—भगवन् ! पचम आरे की समाप्ति के बाद छट्ठे आरे मे भारत भूमि की परिस्थिति कैसी होगी ? उस समय के प्राणियों की स्थिति भी कैसी होगी ?

भगवान ने प्रत्युत्तर दिया—हे गौतम ! उस समय भारतवर्ष के जीवों को अति भयंकर दुःख सहना पड़ेगा, जिससे मनुष्य 'हा हा' शब्द करेंगे, पशु की तरह 'भा भा' शब्द की पुकार करेंगे और त्रस्त पक्षी जैसे चीचीआरी करके कोलाहल करेंगे।

काल के प्रभाव से उस समय असह्य, कठोर, धूल मिश्रित भयकर वायु फैलेगी, धूल के गोठे उड़ेंगे और दिशाए अंधकारमय बन जायेंगी।

काल की रुक्षता से चन्द्र अधिक ठंडा और सूर्य अधिक गर्म लगेगा।

मेघ की मूसलधार वर्षा होगी, जिनका पानी अपेय, विकृत रसयुक्त और अति खारा होगा। बिजली भी अग्नि के समान दाहक होगी।

पंचम काल तक के भारतवर्ष के पशु-पक्षियो, मनुष्यों, लता, वृक्ष आदि औषधियो का नाश होगा।

वैताढ्य के सिवाय के पर्वत, धूल के ऊँचे स्थान, रज बिना की भूमियाँ नाश होंगी।

गंगा और सिन्धु ये दो नदी के सिवाय पानी के झरने तथा ऊँचे नीचे स्थान समान हो जायेंगे।

उस समय भूमि गर्मी से साक्षात् अग्नि जैसी बनेगी। बहुत धूल, सेवाले और कीचड़ वाली भूमि पर मनुष्यों का चलना भी कठिन होगा।

उस समय मनुष्य के शरीर का रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श बहुत ही खराब होगा। उनका स्वर हीन, दीन और अनिष्ट होगा। कपट, कलह, वध, बंध और वैर आदि पाप में आसक्त रहेगे। मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, अकार्य में तत्पर, माता-पिता की आज्ञा नहीं मानने वाले उद्दत और अविनयी होंगे।

उनका आकार वेडोल और नाखून, बाल, दाढ़ी, मूंछ और शरीर के रोम डुक्कर जैसे बढ़े हुए होंगे। उनका रूप भयंकर, गाल टेढ़े, शरीर कर्कश, आँखें वेडोल, नाक टेढ़े और मुँह कुरूप होगा। शरीर खुजली, कोढ आदि रोगो से पीड़ित होगा। गति भी ऊँट आदि जानवरों जैसी होगी। संघयण, स्थान, शय्या और भोजन भी उनका खराब होगा।

उनका शरीर एक हाथ प्रमाण ही होगा। बीस वर्ष की आयुष्य होगी। छोटी उम्र में ही युवान बन कर बहुत अधिक पुत्र-पुत्रियों के माँ-बाप होगे। छट्ठे आरे के अन्त में गंगा और सिन्धु नदी के किनारे वैताढ्य पर्वत की निश्रा में रहकर अपना जीवन पूर्ण करेंगे।

उस समय मनुष्यो का आहार मांस, मछलियां होंगी। बहुत ही कम विस्तार में बहने वाली गंगा और सिन्धु नदी के पानी में होने वाली मछलियों और कछुओ को पकड़ कर रेत में दाट या दबा देंगे, तथा ठंड और धूप मे पके हुए जीवों का भक्षण करेंगे।

शील रहित, मर्यादा को भंग करने वाले, पच्चखाण रहित, मांसाहारी, मत्स्याहारी और मृत शरीरो का आहार करने वाले छट्ठे आरे के मनुष्य मृत्यु के बाद भी नरक या तिर्यंच गति मे जन्म लेकर अति दुःख प्राप्त करेंगे।

उस समय के शेर, सिंह, भालू आदि जानवर भी नरक या तिर्यंच गति मे उत्पन्न होंगे। और,

मोर आदि हिंसक पक्षी भी हल्की गति मे जायेंगे ।

इस प्रकार का स्पष्ट वर्णन जानने के बाद भी जो दुष्कर्म से हटकर सत्कर्म नहीं करते, उसके लिये नरक या तिर्यंच गति तैयार है, जहां से दीर्घ-काल तक मनुष्य गति में आना मुश्किल होगा। सयोग से छट्ठे आरे मे मनुष्य भव पा गये, तो भयकर पाप कर्म करके ससार समुद्र मे डूबे बिना नहीं रहगे। यदि हम भविष्य मे सद्गति और भगवान तीर्थंकर देव का शासन चाहते हैं, तो इस भव मे देव-गुरु और धर्म की ज्यादा आराधना करें, भगवान की भक्ति मे लीन बनें, दुनिया के विलासी वातावरण एव बाह्य रग राग से आसक्त भावो को छोड़ें और किसी के साथ अन्याय एव दुर्व्यवहार न करके सभी व साथ औचित्य रखें।

आस्रवो को छोडना और सवर भाव मे जाना, यह दुष्ट कर्मों को रोकने का श्रेष्ठ उपाय है।

ध्यान रखें कि यह मनुष्य भव अपनी कसौटी के लिए है। यहा से शिखर आरोहण और ऊडी गर्ता मे पतन दोनो ही सम्भव है। प्रमाद मे पड गये तो दुर्गति की गर्ता है और सावधान बन गये तो स्वर्ग और सिद्धि के शिखर भी तैयार हैं। क्या चाहिए ?

जैसे छोटा बालक अगूठे को चूसता है तथा उसे अगूठे में दूध का भ्रम होता है, इसी प्रकार जैसे कुत्ता हड्डी को चूसता है तथा रक्त उसके स्वय के दातो से ही निकलने पर भी वह उस रक्त के स्वाद को हड्डी का स्वाद ही मानता है, उसी तरह मानव भी बाह्य पदार्थों में जो सुखानुभूति करता है वह भी भ्रममात्र ही है। सच्चा सुख तो आत्मा मे भरा हुआ है मात्र उसे समझने व खोजने की आवश्यकता है।

•

माया कपट करने से व्यक्ति तिर्यंच गति मे जाता है तथा सरल व्यक्ति मनुष्य गति को प्राप्त करता है।

आचार-धर्म के महासाधक : पू. दादा श्री जीतविजयजी म.

[कच्छ वागड़ देशोद्धारक पूज्यापाद दादा श्री जीत वि० म० की ६१वीं स्वर्गवास तिथि पर पू० आ० श्री वि० कलापूर्ण सूरीश्वरजी म० सा० का गुणानुवाद रूप प्रवचन] —अवतरणकार : **श्री मुनीन्द्र**

जहाँ श्री विजय सेठ—विजया सेठानी जैसे शीलवान और जगडुशाह जैसे महान् दानवीर नर-रत्न पैदा हुए है उस कच्छ देश के छोटे से गाँव—मनफरा मे आज से करीब १४५ वर्ष पूर्व वि.सं. १८७६ में पूज्य दादा श्री जीतविजयजी महाराज का जन्म हुआ था। मनफरा गाँव यद्यपि छोटा है—लेकिन भावना से बड़ा है। उस भूमि पर पैदा होने वाले ४० से भी अधिक व्यक्तियों ने दीक्षित होकर अपना जीवन प्रभु-शासन को समर्पित किया है। उस पुण्य भूमि में आपको बचपन से ही अच्छे धार्मिक संस्कार मिले। आपका संसारी नाम जयमल्ल रखा गया था। बचपन से ही आप धार्मिक वृत्ति वाले भावुक हृदयी थे।

कर्म की गति विचित्र है। १२ साल की उम्र मे ही आँखो की पीड़ा शुरू हुई और १६ साल की उम्र मे तो आँखों की रोशनी पूर्णतया नष्ट हो गई—आप बिलकुल अंधे हो गये। आँख गई तो सब कुछ गया। अब कैसे जीया जाय ? न केवल आपको ही—अपितु आपके माँ-बाप को भी गहरी चिन्ता होने लगी। इस बालक का क्या होगा ?

मनफरा-गाँव के जिनालय में भ. श्री शान्तिनाथ की प्राचीन व चमत्कारिक प्रतिमा है। जयमल्ल को श्री शान्तिनाथजी पर बड़ी आस्था थी। वे सदैव भगवान् की अनन्य चित्त से भक्ति करते रहते। दर्शन-पूजन-स्तवन आदि में एकतान हो जाते।

जहाँ साधु नहीं होते वहाँ आलम्बन भूत केवल प्रभु-प्रतिमा ही होती है। साधु-समागम तो कभी-कभी ही हो पाता है लेकिन जिन-प्रतिमा तो सदा उपस्थित हो सकती है। अतः जिन्हें जीवन में धर्म टिकाना है, उन्हे जिन-दर्शन व जिन-पूजन दैनिक कर्त्तव्य बना लेना चाहिए।

जयमल्लजी सदैव प्रभु के पास प्रार्थना करते : "हे प्रभो ! अगर आपके प्रभाव से आँखों की रोशनी मिल जाय तो मैं दीक्षा लूँगा।"

दृढ़ संकल्प और हार्दिक प्रार्थना से क्या नही होता ? शुद्ध और शुभ सकल्प के प्रभाव से सचमुच ही जयमल्लजी को नई रोशनी मिली।

नमि राजर्षि के दाह की और अनाथी मुनि के नेत्र-रोग की बात आपने सुनी होगी। वही बात यहाँ हुई।

अब तो जयमल्लजी का चित्त संयम के लिए अत्यन्त लालायित हो उठा। वे मानने लगे—प्रभु ने मुझे नेत्र दिये है—वे संयम-पालन के लिए ही। अब मुझे जल्दी दीक्षित होना ही चाहिए।

लेकिन उन दिनों दीक्षा इतनी सुलभ नही थी—जितनी आज है। उस वक्त (आज से १२५ वर्ष पहले) तपागच्छ में सिर्फ १६ ही संवेगी साधु थे। उन पर ही पूरे भारत के जैन संघ को सम्हालने की जिम्मेदारी थी। दो-चार गुजरात, दो पंजाब, दो राजस्थान दो सौराष्ट्र और दो महाराष्ट्र को सम्हाले हुए रहते। उसमे कच्छ जैसे पिछड़े देश मे साधु-समागम कहाँ से ? यह तब की बात है जब पू० आत्मारामजी म० १८ साधुओं के साथ तपागच्छ मे दीक्षित नही हुए थे।

जहाँ तक साधु-समागम न मिले वहाँ तक भाव-साधु की तरह रहने के लिए जयमल्लजी ने पालीताना यात्रा दौरान भगवान् श्री आदिनाथ के सम्मुख आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकृत कर लिया। उस समय १६ साल की उम्र थी। माँ-बाप को जब यह प्रतिज्ञा विदित हुई तब वे बड़े

जहाँ सग वहा रग ग्रौर जहाँ रग वहा ग्रात्मा तग ही वनती है।

क्या ग्राप सुख चाहते हैं ?

तो एक उपाय है—सुख के ग्रन्य सभी माध्यमो को हटा दो ग्रौर स्वय ही माध्यम वन जाग्रो।

याद रखें 'जव तक सुख पाने के लिए एक या ग्रनेक वस्तु को माध्यम वनाते जाएगे, तव तक वास्तविक सुख हमसे कोसो दूर ही रहेगा। ग्रौर जिस दिन ग्रन्य समस्त माध्यमो को हटाकर स्वय को (ग्रात्मा को) माध्यम वना देंगे, उसी दिन ग्रात्मा सुख के महासागर मे डूव जाएगी'।

याद ग्रा जाती है, वह छोटी किंतु मार्मिक वार्ता—

उस राजा के पास समृद्धि का कोई पार नही था। भोग, वैभव ग्रौर विलास की कोई कमी नही थी। सत्ता सुदरी ग्रौर समित्रो का त्रिवेणी सगम उसका जीवन था। सुख की कोई कमी न थी ग्रौर दुख की एक वूद भी न थी।

राजा अपने खड मे शय्या पर सो रहा था, ग्रचानक मध्यरात्रि मे उसकी नींद खुल जाती है। रत्नों के प्रकाश से उसका शयन खड जगमगा रहा था। सर्वत्र नीरव शाति थी।

ग्रचानक राजा को ग्रपनी समृद्धि का स्मरण हो ग्राया ग्रौर उस स्व-समृद्धि को एक काव्य रूप देने का उसने निर्णय कर लिया।

दिवाल पर एक ग्रोर (Black-Board) ब्लेक बोड था। उसने हाथ मे चॉक (Chalk) ली ग्रौर काव्य की पक्तियाँ, लिखने लगा—

> 'चेनोहरा युवतय स्वजनानुकूला,
> सद्वाधवा प्रणयनम्रगिरश्च भृत्या।
> गर्जन्ति दन्तिनिवहस्तरलास्तुरङ्गा,

ग्रौर राजा विचार में पड गया, काव्य के चौथे पाद को पूर्ण करने के लिए वह प्रयास कर रहा था, परन्तु वह पाद वन नही पा रहा था। राजा सोचने लगा 'ग्रहो' मेरे पास कितनी पारावार सपत्ति है, कितनी सुदरी, मनोहर, रूपवती ग्रौर कलाकुशल मेरी स्त्रियाँ हैं? उनको देखने के वाद ग्रन्य स्त्री को देखने की इच्छा भी कहाँ होती है। ग्रौर मेरा वन्धु वग भी कितना सज्जन है, सदैव मेरा हित ही चाहते हैं। ग्ररे! नौकरवग की तो क्या वात कहू, वे तो मेरे इशारे के साथ दौडकर सेवा मे हाजिर रहते हैं। इसके साथ ही मेरे पास युद्ध भूमि मे जोरदार गजना करने वाले विशालकाय हाथी भी हैं ग्रौर दूर-सुदूर गमन के लिए सुयोग्य घोडे भी हैं। ग्राह! इन्द्र ग्रौर चक्रवर्ती को भी मेरी समृद्धि देख ईर्ष्या होती होगी?

•

राजा ग्रपनी समृद्धि को काव्य रूप दे रहा था, किंतु राजा को उस काव्य का चौथा पाद सूझ नहीं रहा था। वह विचार-मग्न होकर पलग पर लेट गया।

इसी वीच एक ब्राह्मण राजा के शयन खड में चोरी के लिए ग्रा पहुँचा था। वह ब्राह्मण था तो पडित ग्रौर सज्जन, किंतु परिस्थिति ने उसे चोरी के लिए वाध्य किया था।

उसने Black-Board पर काव्य के तीन पाद देखे, तीन पादो का पढते ही उसे काव्य के चौथे पाद की स्फुरणा हो गई ग्रौर राजा की दृष्टि से छुपाकर उसने लिख दिया—

'समिलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति' ग्रौर चला गया। राजा तो निद्रा देवी की गोद मे सो गया था, प्रातःकाल होते ही वह निद्रा से जागृत हुग्रा ग्रौर उसने दिवाल पर दृष्टि डाली ग्ररे! यह क्या? काव्य के चौथे पाद की किसने पूर्ति की?

चौथा पाद पढ़ा और राजा को एक झटका सा लगा ! चौथे पाद में लिखा था—

'दोनों आंखें बंद हो जाने पर कुछ भी नहीं है।'

ओह !

इस पाद ने तो मुझे सम्यग् बोध करा दिया, मैं तो मान रहा था 'यह मेरा.................यह मेरा ! किंतु असलियत में मेरा कुछ नहीं है । आंख खुली है, तब तक मेरा है और आंख बंद होते ही मेरा कुछ नहीं है ।

राजा को सत्य की सम्यग् प्रतीति हो गई ।

दूसरे दिन राजा ने ढिंढोरा पिटाया—गत रात्रि में मेरे राजमहल में कौन आया था ? और पाद पूर्ति किसने की ?

ढिंढोरा सुनकर वह ब्राह्मण राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और उसने अपनी सत्य हकीकत सुना दी ।

राजा को दुनिया का सत्य ज्ञान हो गया था, उसने सोचा—यह क्या ? मैं इन भौतिक साधनों में सुख के सपने संजोए हुए था, परन्तु अफसोस है कि हमारा और उनका नाता लंबे समय तक चिर स्थायी नही है । या तो मुझे इन्हें छोड़कर जाना पड़ेगा या वे मुझे छोड़ देंगे ।

ओह ! दुनिया में सुख के जितने भी माध्यम (Midium) हैं, वे सब धोखेबाज हैं ।

राजा ने संसार के संग का त्याग कर दिया और वह निःसंग बन गया, उसने अपने आपको सुख का माध्यम बना लिया और इसके फलस्वरूप आत्मा के अक्षय सुख का वह स्वामी बन गया ।

अपूर्ण ज्ञान अथवा अज्ञान से मानवी यह कल्पना कर लेता है कि 'मुझे धन का संग हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ' 'मुझे पुत्र का योग हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ' 'मुझे रूपवती स्त्री मिल जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ' ।

सूत्रकार महर्षि कहते हैं कि मानवी की ये सब कल्पना मात्र ही है । वास्तव में ज्यों-ज्यों भौतिक वस्तु व समृद्धि का संग बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों मानव दुःख के गर्त में अधिकाधिक डूबता जाता है । वह संग ही उसे तंग कर देता है ।

मकड़ी का जाल उसके लिए ही बंधन रूप बन जाता है । दुनिया में सुख के जो भी साधन कहलाते हैं, वे सुख के साधन नही, बल्कि सुखाभास के साधन हैं और इस सत्य को पहिचान ले, 'संग मे दुःख है—निसंग मे सुख है ।'

□□

ज्ञान मानव का तीसरा नेत्र है। चर्म नेत्रों से तो प्रत्यक्ष स्थित वस्तु का ज्ञान होता है जबकि ज्ञान के नेत्र से भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकाल का तथा त्रिलोक का ज्ञान संभव है ।

जैन धर्म के विदेश मे प्रथम प्रचारक

☐ मुनि श्री चिदानन्द विजयजी महाराज सा०
भायखला (बम्बई)

विश्व के इतिहास मे पहली बार अमेरिका के चिकागो शहर (सन् १८९३) मे विश्व धर्म परिषद् (सर्व धर्म सभा) का आयोजन किया गया था। जिसे 'धर्मों की लोकसभा' के नाम से भी जाना जाता है। इस परिषद् मे भाग लेने के लिए विश्व के लगभग सभी प्रसिद्ध धर्मों के प्रतिनिधियो को आमन्त्रित किया गया। जैन धर्म के प्रतिनिधि रूप मे क्रान्तिकारी, सत्यप्रेमी प पू आचाय भगवन्त श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी (श्री आत्माराम जी) म सा को आमन्त्रित किया गया। जैन साधुओ की आचार संहिता के कारण जैन मुनि विदेश गमन नहीं कर सकते। क्योकि पैदल जाना वहा सम्भव नहीं था। इसलिए पू श्री आत्मारामजी म स्वय चिकागो जाने मे असमर्थ थे। अत उन्होंने जैन धर्म के प्रतिनिधि के लिए मु बई के जैन एसोसिएशन ऑफ इण्डिया से पत्र व्यवहार किया।

सभी की दृष्टि जैन समाज के प्रथम स्नातक और जैन एसोसिएशन के मत्री श्री वीरचन्द राघवजी गाधी की तरफ गई और उन्हे पू श्री आत्मारामजी म सा के पास भेजा गया।

श्री वीरचन्द राघवजी गाधी का जन्म सौराष्ट्र के 'महुवा' नामक ऐतिहासिक गाँव मे वीसा श्रीमाली जाति परिवार मे २५ अगस्त, १८६४ को हुआ था। १६ वर्ष की आयु सन् १८८० मे मैट्रिक उत्तीर्ण कर सन् १८८४ मे ऑनर्स के साथ बी ए की उपाधि प्राप्त कर स्नातक हुए। जैन समाज के प्रथम स्नातक थे। सन् १८८५ मे जैन एसोसिएशन ऑफ इण्डिया के मन्त्री पद के रूप मे निर्वाचित हुए।

वीरचन्द जी बहुभाषी थे। हिन्दी, गुजराती, सस्कृत, प्राकृत, अग्रेजी, बगाली, फ्रेंच इत्यादि लगभग चौदह भाषाओ पर उनका अच्छा अधिकार था।

हीरे की परख जौहरी ही कर सकता है। पू श्री आत्मारामजी म ने वीरचन्दजी को देखा, परखा और अपने पास रख कर केवल छ मास के अल्प समय मे ही जैन दर्शन के गूढ रहस्यो का अध्ययन करवा कर जैन धर्म और अपने प्रतिनिधि के रूप मे तैयार किया।

विश्व धर्म परिषद् के उद्देश्य—विभिन्न धर्मों का परिचय प्राप्त करना, धर्मों मे आपस मे कहा तक समन्वय स्थापित किया जा सकता है? जगत को सभी धर्मों के तत्त्वो से अवगत कराना, मानव-मानव के बीच सहिष्णुता पैदा करना, विश्वयुद्ध के स्थान पर विश्व शाति को प्रोत्साहित करना, धर्म के नाम पर होने वाले दगो के स्थान पर आपस मे भाईचारे को महत्त्व देना, सभी धर्मों के अनुयायियो के बीच सद् और भ्रातृत्व की स्थापना करना आदि थे।

आज जिस आसानी से हम विदेश मे पढने, रोजगार या देशाटन के लिए जा सकते हैं उस

समय यह कार्य धर्म विरुद्ध समझा जाता था। उस समय समाज को नई दिशा देने या क्रांतिकारी परिवर्तन करने का कोई साहस नहीं कर सकता था। जैन समाज को जब जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में वीरचन्दजी के विदेश जाने का पता चला तो रूढ़िग्रस्त समाज ने उनकी समुद्र यात्रा का घोर विरोध किया।

ऐसे समय क्रान्तिकारी पू. श्री आत्मारामजी म. ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देकर विश्व में जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए वीरचन्दजी को प्रतिनिधि के रूप में भेजने के अपने निश्चय पर अटल रहे। ऐसे समय अगर कोई दूसरा साधारण व्यक्ति होता तो वह शायद समाज के विरोध के आगे झुक जाता। किन्तु "समाज झुक सकता है झुकाने वाला चाहिये" उक्ति के अनुसार पू. श्री आत्मारामजी म. ने उस समय समाज में व्याप्त अज्ञान रूपी अन्धेरे को दूर करने के लिए प्रकाश की एक किरण का कार्य किया। क्रान्तिकारी का प्रतिनिधि भी क्रांतिकारी होता है। वीरचन्दजी भी अपने पारिवारिक जनों द्वारा स्नेहीजनों द्वारा समझाने, डराने, धमकाने पर भी अपने गुरु के आदर्शों से डिगे नहीं और सत्य के प्रति अडिग रहे।

इस परिषद् में विभिन्न देशों से आए हुए विभिन्न धर्मों के लगभग तीन हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें एक हजार से भी अधिक निबन्धों का वाचन हुआ। इसमें दस हजार से भी अधिक श्रोता थे।

विश्व धर्म परिषद् का ११ सितम्बर, १८९३ को उद्घाटन और २७ सितम्बर, १८९३ को समापन हुआ। सत्रह दिनों का यह सम्मेलन अपने आप में अपूर्व, अनूठा और ऐतिहासिक था। आज तक ऐसा धर्म सम्मेलन दूसरा न देखने में आया, न पढ़ने या सुनने को मिला।

हिन्दुस्तान की ओर से इस सम्मेलन में तीन प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में वीरचन्दजी गांधी, हिन्दू धर्म की ओर से स्वामी विवेकानन्दजी और ब्रह्म समाज के रूप में पी. सी. मजुमदार ने भाग लेकर हिन्दुस्तान की कीर्ति में चार चांद लगाए। वीरचन्दजी अपने गुरु पू. श्री आत्मारामजी म. का आशीर्वाद लेकर स्टीमर द्वारा परिषद् में भाग लेने के लिए गए।

वीरचन्दजी का व्यक्तित्व अपने आप में एक विशेष प्रकार का आकर्षण लिए हुए था। आकृति पर ओजस्विता, आँखों में तेजस्विता, माथे पर सुनहरी किनारे वाली काठियावाड़ी पगड़ी, लम्बा कुरता, कन्धे पर सफेद शाल और देशी नोकदार जूते, इस वेश में भारतीयता का परिचय मिलता था।

२९ वर्ष के युवा वीरचन्दजी ने अपनी विद्वत्ता, वक्तृत्व कला, अल्प समय में अच्छे ढंग से विषय को प्रतिपादित करने का कौशल्य, अध्ययनशीलता, गहन चिन्तन, तर्क बुद्धि से पूरी परिषद् को स्तब्ध और प्रभावित किया।

वीरचन्दजी ने जैन दर्शन को दो भागों में समझाया—एक जैन तत्त्वज्ञान और दूसरा जैन नीति, नवतत्त्व, छः प्रकार के जीव, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय, स्याद्वाद, चार गति, मोक्ष आदि।

विश्व क्या है? कर्ता ईश्वर है अथवा कोई और? जीवन का उद्देश्य क्या है? विश्व के अस्तित्व को स्पर्श करते हुए प्रश्नों की तुलनात्मक चर्चा की। जैन धर्म, बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन है, इस तथ्य का प्रतिपादन व तुलनात्मक विश्लेषण किया। जैन धर्म की परिभाषा बहुत ही सुन्दर और सरल ढंग से संक्षेप में समझाई। उन्होंने जैन दर्शन के साथ-साथ भारत के अन्य सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त, बौद्ध दर्शनों पर भी

प्रवचन देकर अपने गहन अध्ययन का परिचय दिया।

वीरचन्दजी ने अपने प्रवचनों मे दूसरे धर्मों की आलोचना करने की अपेक्षा 'जीवन मे अहिंसा', विचार मे अनेकान्त और व्यवहार मे अपरिग्रह विषय का प्रतिपादन कर साम्प्रदायिकता के आग्रहो से मुक्त-तटस्थ नीति अपनाई। इनकी वाणी और व्यवहार से केवल थोथा पाण्डित्य ही नहीं झलकता था बल्कि गम्भीर चिन्तन-मनन, गहन अध्ययन और आचरण भी प्रतीत होता था।

वहा के निवासियो पर जैनधर्म के सिद्धान्तो की ऐसी विद्वतापूर्ण छाप पडी कि कितने ही पत्र-पत्रिकाओं ने इन के प्रवचन अक्षरश प्रकाशित किए। एक अमेरिकन अखबार ने लिखा—"पूर्व के विद्वानो मे से जिस रोचकता के साथ जैन युवक का जैन दर्शन और चारित्र सम्बन्धी व्याख्यान जितने रस से श्रोताओं ने सुना उतने रस से उन्होंने दूसरे किसी पूर्व के विद्वान् को नहीं सुना।"

एक अमेरिकन ने वीरचन्दजी के विषय मे ऐसा अभिमत व्यक्त किया—"धर्मों की लोकसभा मे अनेक तत्त्वचिन्तक, धर्मोपदेशक और विद्वान् हिन्दुस्तान से आकर बोल गए और उनमे से प्रत्येक ने कोई न कोई नया दृष्टिकोण व्यक्त किया। धर्मों के सम्मेलन मे नए तत्त्व जोडते गए। जिससे ऐसा लगता है कि प्रत्येक धम जगत् के सभी धर्मों की पंक्ति म एक इकाई है। इसके उपरात वाक् पटुता एव भक्तिभाव भी विशिष्ट प्रकार मालूम पडता है। इसमें से प्रखर पाण्डित्य, और चिन्तन-मनन प्राप्त हुआ, परन्तु उसी प्रकार इन सभी मे से जैन धर्म के एक युवक गृहस्थ को सुनने से नीति और दार्शनिकता की नवीन झलक मिली। वैसे तो वे मात्र गृहस्थ परिवार के सज्जन हैं। कोई साधु, मुनि या धर्माचार्य नहीं, परन्तु वे इतना सुदर और सरल प्रतिपादन करते हैं तो इनके गुरु कैसे होंगे? इनकी सादी और सचोट जैनधर्म की दार्शनिकता अवश्य जानने और समझने योग्य है।"

इसी प्रकार अमेरिकन अनेक पत्र-पत्रिकाओं, राजनेताओं, पादरियो, सामाजिक—प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने वीरचन्दजी के बारे मे अपना-अपना अभिप्राय देकर उनकी प्रतिष्ठा और कीर्ति को बढाया।

विश्व धम परिषद् के प्रमुख चार्ल्स सी सी बोनी भी वीरचन्दजी से अत्यधिक प्रभावित हुए। परिषद् के सयोजकों एव विद्वानो ने वीरचन्दजी को 'रौप्यचन्द्रक' अर्पण कर गौरव का अनुभव किया। कासाडोगा शहर मे ८ अगस्त, १८९४ को 'Some Mistake Corrected' विषय के प्रवचन से प्रभावित होकर वहा के नागरिको ने 'सुवर्ण चन्द्रक' समर्पित किया।

वीरचन्दजी ने अमेरिका मे 'The Gandhi Philosophic Society' और 'The School of Oriental Philosophy नामक दो सस्थाओं की स्थापना की। शिकागो मे 'Society for the Education of Women of India' नामक सस्था स्थापित की। इस सस्था की मन्त्री पद के लिए अपनी शिष्या श्रीमती हावर्ड को नियुक्त किया, जिन्होंने आपसे प्रभावित होकर शुद्ध शाकाहार और चुस्त जैन धर्म को अपनाया था और वह जैन सिद्धान्तो के अनुसार प्रतिदिन विधि सहित सामायिक इत्यादि क्रिया-कलाप भी करती थी।

अमेरिका के पश्चात् इगलैण्ड, यूरोप, फ्रास आदि देशों मे प्रवास कर जैन धर्म एव जैन दर्शन का प्रचार किया। इग्लैण्ड में शिक्षण वर्ग वाशिंग्टन मे 'The Gandhi Philosophical Society', लदन में 'Jain Literature Society' आदि सस्थाए स्थापित कीं।

वीरचन्दजी से प्रभावित एक धर्म जिज्ञासु हर्बर्ट वॉरन ने मासाहार का त्याग कर जैन धर्म

स्वीकार किया और इन्होने वीरचन्दजी के प्रवचनों के आधार पर 'Jainism' नामक पुस्तक लिखी।

विदेशों में जैन धर्म की ज्ञान ज्योति जलाते हुए जब वीरचन्दजी सन् १८९५ में स्वदेश लौटे तब मुंबई में धार्मिक जनता ने उन्हें जैन धर्म के श्रेष्ठ प्रचारक के रूप मे सम्मानित किया। मुंबई में श्री हेमचन्द्राचार्य सत्र की स्थापना की। तत्पश्चात् विदेशों से आमंत्रण आने के कारण पुनः दो बार वे विदेश गए।

वीरचन्दजी का अल्प जीवन अनेक यशस्वी सिद्धियों से भरा हुआ है। उन्होंने केवल जैन धर्म का ही प्रचार नही किया अपितु जैन तीर्थों की पवित्रता में आने वाली बाधाओं का निवारण भी किया।

(सन् १८८५-८६) पालीताणा के ठाकुर सुरसिंह के द्वारा तीर्थ यात्रियों से बड़े ही बेहूदे ढग से यात्री कर वसूल किया जाता था। जैन समाज के नेताओं ने ठाकुर साहेब को समझाया कि आप के आदमी हम से जो कर मांगते हैं वह तो हम चुका देते हैं, किन्तु उनके द्वारा जिस अनैतिक ढग से कर वसूल किया जाता है वह ढंग उचित नही है। किन्तु इस तरह समझाने से ठाकुर साहेब पर कुछ भी असर न हुआ। इस बात से परेशान होकर आनन्दजी कल्याणजी पेढी ने ठाकुर साहेब के विरुद्ध कोर्ट मे केस दायर किया, किन्तु कोर्ट ने ठाकुर साहेब के राजनीतिक प्रभाव के कारण उचित न्याय नही किया।

यह बात जब वीरचन्दजी को मालूम हुई तो उन्होंने इस प्रश्न को अपने हाथ मे लिया। वह ऐसा समय था कि ठाकुर साहेब के खिलाफ आवाज उठाना मौत को आमंत्रण देना था। ऐसे घुटे हुए दूषित वातावरण मे भी वीरचन्दजी ने अपनी आवाज को बुलन्द करने के लिए मुंबई के गवर्नर लॉर्ड रे और राजनीतिक एजेन्ट कर्नल वॉटसन के साथ सम्पर्क स्थापित कर अनुकूल वातावरण तैयार किया और अन्त में यह निश्चित किया गया कि ठाकुर साहेब तीर्थ यात्रियों से कर न लेंगे, किन्तु उस कर की क्षति पूर्ति आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी १५,०००) रुपये वार्षिक देकर करेगी।

इसके बाद भी इस तीर्थ सम्बन्धी उठे विवादों के समाधान का श्रेय वीरचन्दजी ने प्राप्त किया।

(सन् १८९१) सम्मेत शिखर तीर्थ के पर्वत का एक भाग बोडेम नामक अंग्रेज ने पालगंज राजा के पास से कत्लखाना खोलने के लिए लीज पर लिया। इस कत्लखाने में सूअर आदि प्राणिओं को काटकर उनकी चर्बी आदि के व्यापार की योजना थी।

इस बात को लेकर समग्र जैन समाज के अन्दर आन्दोलन की लहर दौड़ गई। "चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पडे किन्तु यह तो बन्द होना ही चाहिए" ऐसी अहिंसक जैन समाज की आन्तरिक भावना थी। इस अमानवीय कार्य के विरोध में अंग्रेजों के विरुद्ध जनता का रोष भड़का, धर्मबल संगठित हुआ और बिहार के कोर्ट में केस दायर किया गया। सबोर्डिनेट जज की कोर्ट मे जैन समाज की हार हुई। तत्पश्चात् कलकत्ता के हाईकोर्ट में अपील दायर की गई। यह कार्य भी वीरचंदजी को सौंपा गया।

इस कार्य को करने के लिए वे स्वयं कलकत्ते गए। दस्तावेज, ताम्रपत्र आदि की जानकारी के लिए जो बंगाली भाषा मे थे उनको समझने के लिए उन्होंने छह महीने कलकत्ते मे रहकर बंगाली भाषा का अध्ययन किया।

वीरचन्दजी ने निष्ठापूर्वक कार्य करके अन्ततः सफलता प्राप्त की और प्रारंभ होने वाला कत्लखाना बन्द करवाया। कोर्ट ने अपने निर्णय मे लिखा—"सम्मेतशिखर जैनों का तीर्थस्थान है दूसरे किसी को यहां दखल देने का अधिकार नही।" यह केस 'पिगरी केस' के नाम से विख्यात है।

काबी (गुजरात) तीर्थ, मक्षी तीर्थ सम्बन्धी विवाद का भी सुन्दर रीति से समाधान करवा कर तीर्थों को उन पर होने वाली अपवित्रता से बचाया।

वीरचन्दजी ने इग्लैण्ड मे 'इन ऑफ कोट' में प्रवेश ले कर जैन समाज के प्रथम बैरिस्टर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। सन् १८९५ पूना के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस सम्मेलन मे मुबई के प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया। सन् १८९९ मे अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य परिषद् मे एशिया का प्रतिनिधित्व किया। सन् १८९६-९७ मे हिंदुस्तान में जब दुष्काल पडा तब अमेरिका मे आपके द्वारा स्थापित दुष्काल राहत समिति के अध्यक्ष चार्ल्स सी सी बोनी थे। (यही विश्व धर्म परिषद् के अध्यक्ष थे।) वीरचदजी ने बोनी से सम्पर्क स्थापित कर समिति की ओर से तत्काल चालीस हजार रुपये और अनाज से भरी हुई स्टीमर भारत मे भिजवाई।

वीरचन्दजी ने अपने विदेश प्रवास के अन्तर्गत लगभग ५३५ प्रवचन दिए। इनमे से अधिकाश प्रवचन 'The Jain Philosophy', 'The Yoga Philosophy', और 'The Karama Philosophy', नामक तीन पुस्तकों मे सकलित किये गये हैं।

श्री वीरचन्द राघवजी गांधी का ३७ वर्ष की अल्पायु मे ही ७ अगस्त, १९०१ को बम्बई में स्वर्गवास हो गया।

वीरचन्दजी ने स्वय के इस अल्पकालीन जीवन मे गुरु आत्म की आज्ञा से तथा धर्म प्रचार की भावना से जो क्रातिकारी कार्य किये, तीर्थ सुरक्षा व तीर्थ शुद्धि के कार्यों मे जो सफल प्रयास किए वैसे साहस पूर्ण कार्य युवा वर्ग मे युवा समाज करे ऐसी अपेक्षा रखता हू।

□□

मानव से गलती हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन गलती को गलती समझना बुद्धिमत्ता है, तथा दूसरी बार गलती न करना—महामानव बनने का मार्ग है।

× × ×

महापुरुषो की कथाए जीवन के सार को सरल रीति से समझाती हैं तथा मानव के लिए 'आदर्श' बनने का मार्ग निर्दिष्ट करती हैं अत रिक्त समय मे महान् व्यक्तियो के जीवन चरित्रो का अध्ययन करना चाहिए।

जीवन का माधुर्य : "ज्ञान और क्रिया"

□ पूज्य साध्वी मनोहरश्री जी महाराज
जैन दादावाड़ी, झुंझुनूं

भारत का पेरिस गुलाबी नगर, जयपुर ऐतिहासिक वैभव रत्न वाणिज्य प्राकृतिक सौंदर्य, ज्योतिषिक प्रतिभाओं के साथ-साथ संतों के समागम सम्मान मे भी अग्रणी रहा है। इस सत्य का अनुभव मैंने वि. सं. २०४० जयपुर वर्षावास मे किया, जहां का समाज प्रतिवर्ष विद्वान् प्रभावक आचार्य मुनिवृंद, आर्यामंडल के ज्ञान से लाभान्वित होता रहा है और अपनी सेवा-श्रद्धा-सद्भावना से वीर शासन शोभा में वर्णनीय योगदान दिया है। अपेक्षा है, जयपुर के रत्नपारखी सज्जनों से ! जो अपने जीवन परीक्षण में भरसक प्रयत्नशील होकर संत-रत्नों की प्राप्त सान्निध्यता को सफल बनावें ! ! !

जैन दर्शन विशाल व विश्वव्यापक है। इसका विचार पक्ष (सिद्धांत-ज्ञान) व व्यवहार पक्ष (आचरण-क्रिया) दोनों पहलू समतुल्य है। एक दूसरे के साथ कही विसंगता नहीं। जितना सूक्ष्म तत्त्वज्ञान है उतना ही विशुद्ध आचरण है।

अनन्त उपकारी भ. महावीर ने दीर्घकालीन साधना से स्वयं ने जो भी प्राप्त किया उसे करुणा भाव से परम वात्सल्य से जगत को अर्पण कर दिया। परमात्मा तक पहुँचने की एक प्रक्रिया बतलाई—कैसे जीवन की साधना सत्य की भूमिका के द्वारा सफल बने ? कैसे सत्य के आचरण पर प्रतिष्ठित हो ? सम्पूर्ण धर्म क्रिया आचरण के द्वारा परिलक्षित हो ? कैसे मूर्छित आत्मा की वर्तमान अवस्था के अन्दर जागृति का शंखनाद हो ? ....आदि।

वीतराग भ. ने अपनी संयत वाणी में शुद्ध आत्मा का परिचय दिया उसमें कोई सम्प्रदाय, जाति देश का नाम नहीं ! सूर्य का प्रतिबिम्ब हजार वर्तनों अलग-अलग होते हुए भी एक सा नजर आयेगा। प्रत्येक आत्मा शरीर की अपेक्षा अलग-अलग होते हुए भी अन्तर में परमात्म तत्त्व से मंडित है। यदि ज्ञान के साथ क्रिया का समन्वय हो तो चित्त की पवित्रता व स्थिरता को व्यक्ति सहज में प्राप्त कर लेगा।

दूध चाहे ५ लीटर हो १० हो या ५० लीटर मात्र १ चम्मच दही उसमें रूपान्तरण कर देता है। दूध की चंचलता को स्थिर कर देता है। चित्त की अनादि अनन्त कालीन अस्थिरता, मन की चंचलता, हृदय की व्यग्रता के परावर्तन के लिए परमात्म वाणी-ज्ञान रूपी दही का चम्मच प्रक्रियात्मक रूप में डाल दिया जाये स्थिरता मिल जायेगी। परमात्मा की वाणी पूर्णतया निर्दोष है, आरोग्य पथ्य है, विकार रहित है। ३५ गुणों से युक्त उपदेश लब्धि द्वारा जन्मी वह भाषा है जिसका श्रवण संज्ञान सश्रद्ध आचरण युक्त हो तो जीवन सार्थक बनता है।

जैन धर्म ज्ञान क्रिया का मार्ग है। ज्ञान से जीवन मे आलोक का प्रभात, विवेक दीप प्रज्वलित होता है, क्रिया से जीवन को गति मिलती है, चमक आती है। ज्ञान क्रिया को विशुद्ध बनाता है तो क्रिया ज्ञान को चमकाती है। फलफूल पत्तों से लदी शाखायें वृक्ष की शोभा है तो उधर वृक्ष उन्हें रस प्रदान करता है। जल कमल से सुशोभित होता है तो कमल जल से पल्लवित होता है। रसायन शास्त्र की भाषा में पानी का सूत्र 'एच₂ओ' है (दो भाग हाइड्रोजन एक भाग ऑक्सीजन = पानी) उसी प्रकार जीवन का सूत्र 'एस₂ए' है (दो भाग स्टडीज (ज्ञान मनन) एक भाग एक्टीविटी (प्रवृत्ति) = जीवन) किन्तु जब तक

ज्ञान-क्रिया का उचित सामजस्य नही हो पाता तब तक सम्यक्गति नहीं आ सकती। चूं कि व्यक्ति के भटकने पर परिवार, समाज और कभी-कभी राष्ट्र तक भटक जाता हैं। एक हिटलर के भटकने पर पूरा का पूरा राष्ट्र भटक गया। जिस युग मे ज्ञान क्रिया का समन्वय था उस युग का पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व आध्यात्मिक जन-जीवन विकास के उच्च से उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था। वर्तमान स्थिति ही कुछ भिन्न है आज बौद्धिक विस्तार बढता जा रहा है। कुतर्क का बोलबाला है विधि-विधान धर्मध्यान मात्र ढकोसला, अंधविश्वास रूढिवाद बनकर रह गया है फलत जीवन के व्रत स्थल मे तप, त्याग, सयम साधना का मधुर रस नहीं झर रहा है। मुट्ठी मे बंद मिश्री से मुह मीठा न होने की शिकायत करना व्यर्थ है मिश्री खाये और मीठा न लगे तो शिकायत यथार्थ है किन्तु ऐसी शिकायत कभी हो ही नहीं सकती। मिश्री का गुण मधुरता व शीतलतादायक अवश्य मीठा लगेगा। मदिर-मूर्ति, जिन पूजा, गुरुवदन सामायिक पौषध, प्रतिक्रमण, प्रवचन, तपस्या बेगारखाना, आडम्बर मात्र नहीं वरन् जीवन के गूढ रहस्यों को उजागर करने वाले हैं। इस मिश्री को पुस्तक या श्रवण रूपी मुट्ठी में बंद न रखे अपितु आचरण में लेने पर ही उसकी मृदुता का सचरण हो सकेगा।

दर्जी कितना भी होशियार हो, बडी सुन्दर कला उसे आती है पर सूई, डोरा, कैंची न हो तो कार्यपूर्ति असम्भव है। डॉ बहुत क्वालीफाइड हो पर स्टथोस्कोप न हो इजेक्शन आपरेशन के साधन न हो तो वह रोगी को कैसे आरोग्य प्रदान करेगा? बिजली के निगेटिव पाजेटिव दोनो तारो के सयोग से ही बल्ब मे प्रकाश जगमगा सकेगा। घडी के दोनों कांटे गतिशील होंगे तभी सही समय सूचित कर सकते हैं। गृहिणी खाना पकाने में माहिर है पर सामग्री के अभाव में भोजन का जायका कैसे दे सकती है। हर क्षेत्र मे साधन की जरूरत है। तट पर खडे होकर हजारो वर्ष तक तैराकी पर शास्त्रार्थ करते रहे तैरना नहीं आ सकता तैरने की कला पानी मे कूद हाथ-पाव मारने का परिश्रम करने पर ही आयेगा।

ज्ञान अक हैं तो क्रिया शून्य। गणित शास्त्र मे अक के बिना शून्य का मूल्य नही तो शून्य से अक की कीमत दस गुणी बढ जाती है। ज्ञान मूलधन है क्रिया तिजोरी। ज्ञान क्रिया के द्वारा ही सुरक्षित, प्रभावक व लाभदायक होता हैं।

जहा ज्ञान और क्रिया के मध्य समुद्र जैसी खाई हो तो कहना होगा वह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का दुर्भाग्य है कि दोनो की दिशा एक न होने के कारण वह बर्बाद हुआ जा रहा हैं आज हो भी यही रहा है—कवि के शब्दो मे

> ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हैं,
> इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
> एक दूसरे से न मिल सके,
> यह विडम्बना है जीवन की॥

मनुष्य के अन्तर्मन मे, प्राणिमात्र के मानस में अनन्त-अनन्त काल से विचारो की एक तरग उठती रही है एक कल्पना, एक भावना निरन्तर चक्कर लगाती रही है। वह है—अपने आपको विजेता के रूप मे देखने की अदम्य लालसा। जीवन मे माधुर्य बिखेरने की अपूर्व अभीप्सा। मनुष्य तभी विजय पा सकेगा, जब वह ज्ञान और कर्म का समन्वय साध सकेगा। जीवन मे दोनो को आत्मसात् कर लेगा। परिवार समाज एव राष्ट्र भी तभी विजय ध्वज लहरा सकेंगे जब वे अपने जीवन मे ज्ञान क्रिया को एक आसन पर विठा सकेंगे। जीवन मे अनुपम माधुर्य बिखेर देने का आध्यात्मिक अमोघ सूत्र है—"ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष"।

□□

असारोऽयं संसारः

□ पूज्य साध्वी किरणलता श्रीजी

हम सुनते हैं कि संसार असार है, इसलिए ही हमें इस बात को नही मान लेना है। हम स्वयं प्रतिदिन इसी की अनुभूति कर रहे हैं। कितनी आशाएँ और कामनाओं के साथ हम संसार की प्रवृत्तियां करते हैं, फिर भी वास्तविक सुख और शांति हमे स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हुई। इस तथ्य की प्रति समय अनुभूति होने पर भी हमें संसार की असारता नही लगती है। वैराग्य प्राप्त नहीं होता है, यह कर्मों की कितनी कठिनता है।

यह संसार दावानल जैसा है, आधि-व्याधि-उपाधि और चिंताओं से सुलगता है। राजा हो या रंक, सेठ हो या नौकर, धनवान हो या गरीब, सभी को समस्याएं और दुःख हैं।

हमें वर्तमान मे ही नहीं, अनन्त विराट् भूतकाल मे भी अनन्त दुःख प्राप्त हुआ है, भूतकाल मे हमारे भवो इस प्रकार से हुए हैं, जिनका वर्णन भी दुःखजनक है।

जहां हम अनन्त बार जा चुके हैं, ऐसी नरक गति में सुख का कोई अंश नहीं है, केवल दुःख, दुःख ही है। अति भयंकर महादुःखो और पीड़ाओं मे लाखों, करोड़ों वर्षों से भी अधिक नरक के आयुष्य को कैसे पसार किये होंगे।

देवगति के विलास मे डूबकर लोभ और ईर्ष्या आदि से हमें कितना भयंकर मानसिक संताप प्राप्त हुआ है। तिर्यचगति-पशु योनि के भव मे कितने दुःखपूर्ण और विवेकहीन होते हैं, यह हम सदा आंखों से देखते हैं। वहां भी हम अनन्त बार जा चुके हैं।

मनुष्य गति में भी कितनी परवशता, कितनी गरीबी और कितना दुःख है, यह किसी से अज्ञात नही है। हमें यह चतुर्गति रूप संसार में अनंत बार जन्म और मरण धारण किये हैं और अनन्त भयंकर दुःख प्राप्त किये हैं।

आहार आदि ४ संज्ञाओं की तीव्र गुलामी से भी हमारी इन भवों मे कैसी स्थिति हुई है? चींटी बने तो शक्कर को पीछे दौड़ते रहे, मच्छर बने तो दूसरों के खून पीते रहे, मक्खी बने तो विष्ठा जैसे दुर्गन्ध पदार्थों को सूंघते रहे, कृमि बने तो विष्ठा में ही डूबे रहे। पृथ्वी, अपू, तेउ, वायु और वनस्पति में हमने क्या दुःख प्राप्त नही किया? निगोद में तो एक श्वासोश्वास में ही १६।। बार जन्म और मरण अनन्त काल तक धारण करते रहे। इस प्रकार अनन्त भवों में अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी हमने पसार की।

ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को सर्वश्रेष्ठ कहा है, क्योंकि यहां पर वास्तविक धर्म की आराधना हो सकती है, और इससे सांसारिक सर्व दुःखो का क्षय करके हम मोक्ष मे जा सकते हैं।

यदि हमें भयानक दुःखो को नही प्राप्त करना है, और आत्मिक शाश्वत सुख और आनन्द प्राप्त करना है तो हम जिनेश्वर से कथित धर्म की सदैव आराधना करते रहें। प्रमाद और विषय-कषायों से हटकर जब हम धर्म मे ही समस्त जीवन समाप्त करेंगे और असार संसार से छूटकर चारित्र धर्म की भावना और प्राप्त करेंगे, तो ही यह मिला हुआ दुर्लभ मनुष्य जन्म सार्थक होगा और समस्त दुःखों का एक दिन क्षय होगा।

मानवता की ओर

☐ पूज्य साध्वी शशिप्रभा श्रीजी

प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता ज्ञात करने के लिये, उसका स्वरूप समझने के लिये, उसको वाह्य और आन्तरिक दोनो को समझना आवश्यक है। रगरूप आकार प्रकार उसके बाह्य स्वरूप हैं, और स्वभाव गुणावगुण उसका आभ्यन्तर स्वरूप है। जीवन के भी दो रूप हैं—भोजन पान, घूमना, फिरना, खेलना कूदना, पढना, लिखना, आजीविका के लिए व्यापार धधा करना, कुटुम्ब पालन, सन्तानोत्पत्ति आदि सब वाह्य कायमय वाह्य जीवन हैं। मानसिक प्रवृत्तिया—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सय, क्रूरता आदि दुगु ण विकार तथा दया, सेवा, प्रेम, वात्सल्य, उदारता आदि सद्गुण जीवन का आन्तरिक स्वरूप हैं।

जिस प्रकार जीवन धारण करने के लिए उपयुक्त आहार-विहार तथा शुद्ध जलवायु अपेक्षित है, उसी प्रकार आन्तरिक जीवन के लिए सद्गुणो का विकास भी आवश्यक ह। यदि जीवन मे उपयुक्त सद्गुणो का अभाव है तो जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकना असम्भव है।

मानव मे दया का भाव न हो तो वह क्रूर बन जाता है। उसकी कोमल भावनायें समाप्त हो जाती हैं, और फलस्वरूप जीवन विषमय बनकर समीप के वातावरण को भी विषमय बनाता रहता ह। मनुष्य पशुओ को क्रूर हिंसक बतलाता ह पर जरा मनुष्य के और पशु के व्यवहार की तुलना कीजिये कि पशु मनुष्य की हिंसा अधिक करते हैं या मनुष्य पशुओ की। पशु तो जो आमिषभक्षी हैं वही कभी-कभी मनुष्य का सहार करता है, किन्तु मनुष्य तो खाने के लिये ही नहीं विभिन्न कार्यों के लिये औषधियो की खोज के लिये, औषधिया बनाने के लिये मानव कल्याण के नाम पर भी बेचारे निरीह पशुओ की हत्या प्रयोग के नाम पर करते नही हिचकिचाता। क्रीडा समझकर पशु पक्षियो की हत्या करता है। आजीविका के लिये भी करता है, अत मानव पशु से अधिक हत्यारा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही। क्रूरता का भाव न हो तो स्वाभाविक रूप से मानव ही नहीं ससार के सभी प्राणी दया, प्रेम वात्सल्य आदि कोमल व उदात्त भावनाओ से पूर्ण हैं, किन्तु स्वाथवश हो मनुष्य ने ससार को एक कत्लखाना बना डाला है और अपनी कोमल अथच उदात्त भावनाओ को विकसित होने से पहले ही स्वाथ के पत्थर से कुचल डालता है।

जो अवस्था उपयुक्त करुणा के विषय मे है वही प्रत्येक सद्गुण व उदात्त भावनाओं की ह। आज के इस भोगवाद के युद्ध मे मानव ने आन्तरिक कोमल और उदात्त भावनाओ का दमन कर असन्तोष, अशान्ति और व्यग्रता ही तो पाई ह। क्योकि सयम और त्याग रहित जीवन से वह और किस सुख की आशा कर सकता है? जहा जीवन मे केवल स्वाथ ही लक्ष्य रह जाता है। यहा मनुष्य की मनुष्यता बेचारी बिलखती हुई उसे छोडकर अपना स्थान कहीं और ढूढने निकल पडती है और मानव मे दानवता अपना निवास

स्थायी बना लेती है। मानव वैसे कार्य करने लगता है कि राक्षस भी लज्जित हो जाय। आये दिन दैनिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली हत्याओं बलात्कारों और वीभत्स घटनाओं के समाचार मानव शरीरधारी दानवों के कारनामे ही तो है।

असल में मानव ने केवल बाह्य अन्तर की वसी प्रवृत्तियों को पोषण दिया है जो उसे मात्र पतन की ओर ही अग्रसर करती है। पुण्य प्रवृत्तियो ने मानव को जो श्रेष्ठ शक्तियां प्रदान की है उनकी श्रेष्ठता को उनके महत्त्व को न समझकर उनका दुरुपयोग करता है और फलस्वरूप जीवन से प्राप्त किये जाने वाले आनन्द से वंचित रह जाता है बल्कि कभी-कभी तो उन कार्यो के परिणाम नारकीय जीवन दण्ड या व्याधियों के भोजरूप यही प्रकट हो जाते हैं। फिर भी उन कार्यों से विरक्त नही होता।

आवश्यकता है मनुष्य को अपनी शक्तियो का मूल्यांकन करने की। प्रकृति प्रदत्त इन शक्तियो से वह स्वपर का कितना हित कर सकता है। उसका आत्महित किसमें है? यह खोज करनी चाहिये और आन्तरिक उदात्त भावनाओं दया, सेवा, प्रेम वात्सल्य, उदारता, विनम्रता, सरलता सौजन्य पर दुःख कातरता आदि को विकसित करने का प्रयास करना चाहिये। तभी वह विश्व का सर्व-श्रेष्ठ प्राणी कहलाने का अधिकारी है और अपने जीवन अस्तित्व से स्वपर का हित साधन करता हुआ अमरता की ओर बढ़ सकता है।

'अधभरी गगरी छलकत जाए' अर्थात् जो जितना अल्प ज्ञानी होता है वो उतना अधिक उछलता है व स्वयं को ज्ञानी घोषित करता है। जब व्यक्ति ज्ञान की ऐहिक पराकाष्ठा को छूने लगता है तो फिर वह 'अर्धमृत घटवत्' छलकता नही है बल्कि समुद्र की तरह गंभीर हो जाता है।

× × ×

'इच्छा निरोधस्तप:' इच्छाओं का त्याग करना ही वास्तव मे 'तप' है। आयंबिल उपवासादि बाह्यतप करते हुए भी यदि इच्छाएं बढती जा रही हो एवं दान तथा संतोषवृत्ति जीवन मे परिलक्षित न हो तो समझना चाहिए कि 'तपस्या' अभी जीवन से बहुत दूर है।

× × ×

'स्वाध्याय ही जीवन की कुंजी है।' स्वाध्याय तथा पठन पाठन के बिना 'सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति दुरूह है। यदि जीवन मे ज्ञान-विज्ञान की रुचि न हो तो जीवन का स्तर ऊँचा उठाना बहुत कठिन है।

× × ×

'पढमं नाणं तओ दया' यदि ज्ञान प्रथम सोपान है तो दया (तथा आचरण) द्वितीय सोपान है। यदि जीव अजीवादि तत्त्वों का ज्ञान नहीं तो जीव की रक्षा कैसे संभव हो सकती है? तथा ज्ञान के अभाव मे अविवेक होने के कारण आचरण भी विशेष महत्त्वपूर्ण नही रहता।

परमयोगी जैनाचार्य श्री विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब

☐ श्री शिखरचन्दजी पालावत

आज बढते हुए इस भौतिक विज्ञान के युग मे भी धर्म एव धमनायको का प्राचुय देखा जाता है। ससार का प्रत्येक मानव जहाँ इन आकर्षक पदार्थो की प्राप्ति की दौड मे निरन्तर भटकता नजर आता है, वहाँ हमे कुछ महान् आत्माए ऐसी भी दृष्टिगोचर हो रही हैं जो इन भोगाकर्षक वस्तुओ को ठोकर मार कर भोग से योग की ओर, राग से त्याग की ओर और ममता से समता की ओर कदम बढा रही है। इस प्रकार एक नही अनेक महापुरुष भूतकाल मे हो चुके हैं, वतमान मे मौजूद हैं और अनन्त-अनन्त भविष्यकाल मे भी होते रहेंगे।

उन त्यागी, वैरागी, तपस्वी, महान् विद्वान् श्रेष्ठों की सु दर शृ खला मे शिव भाग के पथिक, ज्ञान क्रिया के सगम-स्यल एवम् 'तत्त्व ज्ञान' के आत्मा की सच्ची पू जी, ज्ञान दशन और चारित्र के जानकार घोर तपोनिधि आचार्य भगवन्त का जन्म राजस्थान के प्रसिद्ध धनाढ्य नगर फलौदी जिला जोधपुर मे ओसवाल जाति के सेठ श्री पाबूदानजी लूकड के घर सन् १९२४ मे हुआ और आपका नाम श्री अक्षयराज लूकड रक्खा गया।

'होनहार विरवान के, होत चीकने पात' लोकोक्ति के अनुसार प्रारम्भ से ही आप विलक्षण गुण सम्पन्न थे, आपका मन प्रभु भक्ति एवम् वैराग्य मे रहने के कारण मन्दिर मे आप घण्टो तक भगवान के पास बैठे रहते थे और कभी-कभी तो ईश्वर के स्वरूप चिन्तन एव ससार के स्वभाव की विचारणा मे आप एकतान हो जाते थे। आपको जैन आचार्य भगवन्तो एव मुनियो की वैराग्यमय वाणी से ससार की असारता महसूस होने लगी, जिसके फलस्वरूप आप प्रतिदिन वैराग्य की ओर झुकते रहे और आपने दीक्षा ग्रहण करने की ठान ली। यद्यपि आप विवाहित हो चुके थे और दो पाल्यपुत्रो के पिता भी बन चुके थे। फिर भी अडिग दृढता से आपने प्रव्रज्या के पथ पर कदम उठाया। सन् १९५४ मे न केवल आपने बल्कि अपने दोनो बालपुत्रो, धमपत्नी, साले, ससुर के साथ कच्छ वागड प्रदेशोद्धारक पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय कनकसूरीश्वरजी महाराज साहिब के शिष्य मुनि श्री कचन वि म के कर कमलो से फलौदी मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार आपका नाम श्री अक्षयराज लु कड से मुनि श्री कलापूर्ण

विजयजी हो गया और दोनों बाल मुनियों का नाम जिनकी उस समय आयु क्रम से 10 व 8 वर्ष थी। मुनि श्री कला प्रभविजय एवं मुनि श्री कल्प तरु विजय रखे गये।

पूज्य आचार्य भगवन्त ने अपने परम गुरु आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय कनकसूरीजी महाराज साहब एवं उनके शिष्य पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय देवेन्द्रसूरिजी महाराज साहब की पावन निश्रा में रह कर जैन शास्त्रो एवं आगमों का गहन अध्ययन किया। आपका अद्‌भुत आत्म विकास देखकर पूज्य आचार्य देवेन्द्रसूरि महाराज साहब ने सन् १९६९ मे आपको पंन्यास पद से विभूषित किया तथा १९७२ मे उन्हीं के हाथों आप प्रसिद्ध तीर्थ भद्रेश्वर में आचार्य पद से अलंकृत हुये।

आध्यात्ममूर्ति पूज्य पन्यासजी श्री भद्रंकर विजयजी महाराज साहब के सान्निध्य में रहकर आपने ध्यान एवं योग मार्ग मे विशेष उन्नति की। यही नही व्याख्यान वाचस्पति पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहब की तारक निश्रा मे रहकर आपने उनका भी परम आशीर्वाद प्राप्त किया है। संयम के प्रति कठोरता, तप के प्रति अनुराग, वड़िलो के प्रति बहुमान आदि गुणो को आपने आत्मसात् किया। योग अध्यात्म और भक्ति के विषय मे आपकी विशेषत: रुचि रही है इसलिए आप जैन जगत मे अध्यात्म-योगी के रूप में प्रसिद्ध हैं।

आप राजस्थान के होते हुए भी आपका अधिकतर समय कच्छ (गुजरात प्रान्त) में ही धर्म प्रचार हेतु व्यतीत हुआ है। कच्छी लोगो का आपके प्रति इतना अनुराग है कि वे आपको देवता स्वरूप मानते है।

आपके कर कमलों से गुजरात व राजस्थान के कई नवीन एवं प्राचीन मन्दिरों की प्रतिष्ठायें हुई हैं। यही नही कई अंजन-शलाकायें साधु-साध्वियों की दीक्षायें एवं उनके योगोद्वहन की क्रियायें भी आपके कर कमलों से हुई हैं। आपकी निश्रा में अब तक कई एक छरीपालते संघ, उपधान, अट्ठाई महोत्सव आदि शासन प्रभावना के कार्य हुए है। और प्रत्येक वर्ष ऐसे कार्य आपके उपदेश से होते रहते हैं। आपके गुजरात से राजस्थान प्रान्त में पदार्पण के बाद मालपुरा जैन मन्दिर की प्रतिष्ठा, मेड़ता रोड पर चैत्री ओली, नागौर में अक्षय तृतीया, मेड़ता सिटी में शान्ती स्नात्र तथा ब्यावर के आजु बाजू के दो मन्दिरों की प्रतिष्ठायें आदि शानदार अनुष्ठान सम्पन्न हुए हैं। और विहार क्षेत्र में अन्य जाति और धर्म के लोगों ने जीवन योग्य अमूल्य प्रेरणा लेकर सैंकड़ों लोगों ने खराब व्यसनों और आदतों से मुक्ति ली है।

आप शान्त प्रकृति एवं सरल स्वभावी होने के कारण जो भी आपसे एक बार मिल लेता है उस पर आपके चरित्र की छाप पड़े बिना नही रहती। आपका अधिकतर समय प्रभु भक्ति में ही लगा रहता है। आपके व्याख्यान भी सरल भाषा में भक्ति रसपूर्ण होते है। न शब्दों का आडम्बर, न आरोह या अवरोह, न मनोरंजक कहानियां फिर भी आपके व्याख्यान प्रत्येक के हृदय मे काफी परिवर्तन लाते है। आपकी सम्पूर्ण दिनचर्या आत्म जागृति पूर्ण होती है। भगवान की भक्ति भाव विभोर हृदय से करते हुए आपको देखना जीवन का परम सौभाग्य है। मुख पर सदैव प्रसन्नतापूर्ण मुस्कराहट, सौम्य मुख मुद्रा, दुर्बल देह, किन्तु उज्ज्वल आत्मा, प्रतिक्षण दीप शिखा की तरह परम तत्त्व की ओर ऊपर उठती चेतना आत्मार्थी को सहज ही आकृष्ट करती है। आपकी आज्ञा मे इस समय २७ साधु एव ४५० से अधिक साध्वियां है जो भारत के विभिन्न स्थानों पर जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे है।

ऐसे गुणों के सागर, जैन शासन के महान्

प्रभावक आचार्य भगवन्त हमारे नगर राजस्थान की राजधानी जयपुर मे चातुर्मास हेतु पधारे हैं, अत समस्त राजस्थान वासियो विशेषकर जयपुर नगर के सभी सज्जनो से मेरी करबद्ध प्राथना है कि आपकी अमृतमय अध्यात्म वाणी का अवश्य लाभ लेने की कृपा करें क्योकि ऐसा स्वर्ण अवसर हमे बार-बार नही मिलेगा । मुझे आशा ही नही वरन् पूर्ण विश्वास है कि जयपुर नगर के सभी जैन बन्धु बिना किसी भेद भाव के आपके व्याख्यान का ही लाभ नही लेंगे बल्कि प्रभु भक्ति, धार्मिक क्रियाएँ, तपस्या, साधु साध्वियों की वेयावच्च तथा बाहर से पधारने वाले भाई बहिनो की सार्धमिक भक्ति करने मे अपना तन, मन, धन न्यौछावर करने मे भी पीछे नही रहेंगे ।

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है । मानव जीवन की ऐसी कोई भी दिशा नही और ऐसा कोई भी क्षेत्र नही जिस पर धर्म का प्रभाव, साक्षात् अथवा परम्परा रूप से नहीं पडा हो । मनुष्यो की विशिष्टता दिखलाने वाली अगर कोई वस्तु है तो वह धर्म है । जैन धर्म के दशवैकालिक सूत्र मे भी यही कहा गया है कि सभी प्रकार के मगलो में धर्म ही सबसे उत्कृष्ट मगल है तथा धर्म के तीन लक्षण बतलाये हैं, अहिंसा, सयम और तप । जिस मनुष्य का मन सदा इस त्रिवेणी धारा मे स्नान करता रहता है उस मनुष्य को देवता भी नमस्कार करते हैं । अत आइये हम सब मिलकर आचार्य भगवन्त की देशना, सुनकर अपने जीवन में महान् परिवर्तन लाकर शुद्ध धर्म की ओर अग्रसर हो ।

भिक्षुक धनवान् के द्वार पर जाकर मात्र धन या वस्त्र की ही याचना नही करता अपितु वह धनवान् व्यक्ति को कुछ शिक्षा भी देता है । वह कहता है —

'दीयता दीयता नित्य, अदातु फलमीदृश'

अर्थात्—हे श्रेष्ठिवर्य ! सदा ही दान देते रहा करो । मैंने पूर्वभव मे किसी को दान देकर पुण्य का सचय नही किया अत मेरी दशा आज मुझे मागने के लिये बाध्य कर रही है । यदि तुमने कुछ दान नही दिया तो तुम्हारी भी यही हालत होगी ।

मंदिरों की सुरक्षा धार्मिक ज्ञान का अभ्यास साधर्मी की सेवा

☐ हीराचन्द बैद
जयपुर

भगवान महावीर के शासन को २५०० वर्ष हो चुके और ज्ञानियों ने कहा है कि वह २१ हजार वर्ष तक निरबाध रूप से चलेगा। इसमें किसी को किसी तरह की शंका नहीं है। पर गत पांच पच्चीस वर्षों से शासन की जो स्थिति बनती जा रही है वह चिंतकों के मन में चिन्ता पैदा करे, ऐसी अवश्य है।

इस लम्बे काल के इतिहास पर दृष्टि डालें तो काफी उतार-चढ़ाव आये हैं, प्रभावक व्यक्तियों ने समय-समय पर शिथिलता को पीछे हटा कर जिन शासन का सही नेतृत्व किया है, मार्ग-दर्शन दिया है। यही कारण है कि सब ओर से शासन पर आने वाले प्रहारों के बावजूद जिन शासन में रहे हम लोगों की आस्था तथा आचार में आज जैसी गिरावट नहीं आई। प्रामाणिकता की छाप हर युग में रही--जैनत्व की धाक भी सब ओर मानी जाती रही, तब ही तो सब कालों में राज्य शासन के संचालन में जिन शासन के सपूतों को ऊँचे स्थान मिलते रहे और उनकी विश्वसनीयता में कभी कमी नहीं आयी। अंग्रेजी राज्य और देशी रिया-सतों तक में भी यह परम्परा बराबर चलती रही। काश ! वह आज भी चल पाती।

आज हमारे आहार-आचार व आस्था में गिरावट क्यों आ रही है--पर्युषण के परिपेक्ष्य में हम इस पर विचार कर लें तो ठीक ही रहेगा। क्षेत्र की मर्यादा मानकर हम राजस्थान के जैन संघ-व्यवस्था व स्थिति पर आज चिन्तन करेंगे।

राजस्थान के जैन परिवार भारत के सारे ही प्रान्तों में खूब फैले हुए हैं, सम्पन्न हैं, बुद्धिशाली हैं, उद्यमी हैं, हर प्रान्त में उनकी धाक है। इस उपरान्त भी राजस्थान की भूमि में वे पिछड़ रहे हैं, धार्मिकता को गुमा रहे हैं अपनी आन-बान और मर्यादा को भुला रहे हैं। कहीं जाहोजलाली दिखती है तो कहीं अकाल सा सा दृश्य—क्यों ? हमें थोड़ा गहराई में उतरना होगा। आज हमारे जीवन में धर्म का स्थान धन ने ले लिया है। उत्सव महोत्सव के माध्यम से हम और हमारा समाज धन खर्च कर खूब प्रतिष्ठा पाते हैं पर हमारे अपना समाज के जीवन में धर्म का स्थाई प्रवेश नहीं हो पाता है। बस यही विडम्बना है

जिस ओर हमारा सबका ही ध्यान जाना अति आवश्यक है।

हमारी सस्कृति का सरक्षण आज तक हुआ है, मन्दिरो से तीर्थों से। विरोधी विचारधाराओ वाले समाजो, जातियो राज्याधिकारियो की ओर से किये गये भीषण प्रहारो के उपरान्त भी अविच्छिन्न रूप से चल रहा जैन शासन इन मदिरो के कारण ही है। यह सबको आज मानना पड रहा है। इन्होंने हमारी सस्कृति का भी कायम रखा है और हमारे इतिहास को भी।

राजस्थान के अनेक क्षेत्रो मे जहाँ आज स्थानिक समाज मे सम्पन्नता नही है, धार्मिक ज्ञान नही है, साधु-साध्वियो का विहार नही है वहाँ पूर्वजो द्वारा निर्मित मन्दिरो की स्थिति जर्जर हो रही है। साथ ही धम का वास्तविक बोध नही होने से उनका झुकाव भी अन्यत्र होता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे आचाय भगवन्तो, समाज के दिग्गजों का ध्यान इस ओर जाना अति आवश्यक है। राजस्थान मे अनक स्थानो पर उत्सव महोत्सवो पर अपार धन का व्यय होता है पर उसका उपयोग समुचित नही होता। प्रभु के लिए समर्पित किया गया धन प्रभु के जजर हो रहे धामों के लिए काम नही आ पाता? एक निवेदन है विशेषकर राजस्थान मे विचरण करने वाले आचाय भगवतो व साधु भगवतो से जिनकी निश्रा मे धार्मिक आयोजन होते रहते हैं, वे ध्यान करें उपरोक्त समस्या की ओर। उपदेश के माध्यम से आगवानो को समझायें कि वृक्ष की हर टहनी के हरी-भरी रहने मे ही वृक्ष की शोभा है। ऐसी बडी आय मे से अमुक प्रतिशत राशि ऐसे मन्दिरो के लिए निर्धारित करें, और उस राशि का उपयोग चाह वे स्वय अपने हाथ से करें या राजस्थान में कार्य सेवारत आगेवानो की एक समिति बनाकर उनके परामर्श से करें। ऐसी व्यवस्था हुई तो १०-२० वष मे ही सैकडो जीण शीण मन्दिर जीर्णोद्धार के माध्यम से नया रूप पा लेंगे। नाकोडा तीर्थ सदृश्य तीर्थों की व्यवस्था समितियो से भी अनुरोध है कि वे अपनी आय का कुछ प्रतिशत नियोजित रूप से इस काय के लिए व्यय करने का प्रावधान रखें। अच्छी आय वाले ट्रस्टो को तो अपने सोमपुराओ के माध्यम से यह कार्य कराना चाहिये। यदि एक ट्रस्ट ने वर्ष में एक मन्दिर का पूरा जीर्णोद्धार करा दिया तो राजस्थान प्रदेश काफी लाभान्वित होगा। इस प्रकार भूतकाल की सम्पदा को हम सुरक्षित रख पायेंगे।

अब थोडा समाज की वतमान की परिस्थिति पर भी विचार करलें। हमारी आस्था और आहार क्यो विकृत हो रहा है। सबसे बडा कारण है धार्मिक ज्ञान की निरन्तर होती जा रही कमी। कहने को कई स्थानो पर धार्मिक पाठशालायें चलती हैं पर क्या वे आज के युग के अनुकूल हैं? केवल देव वन्दन, गुरु वन्दन भर प्रतिक्रमण की पाटिया याद कर लेना या करा देना ही काफी है? हाँ कुछ पाठशालाए ऐसी हैं जहाँ तत्त्व का ज्ञान भी दिया जाता है। पर बडी विनम्रता स अर्ज करता हूँ आज युग की धारा बदल चुकी है यह इतना सब कुछ काफी नही है। आज बुद्धिवाद व तर्कवाद का युग है। जब तक बालक या विद्यार्थी के दिमाग मे ये सब क्रियाए तर्क और विज्ञान की दृष्टि से नही बैठेंगी तब तक उनका सुपरिणाम आवेगा नही। हम डेढ दो सौ का अध्यापक रख कर जो सिफ पाटियो के माध्यम से क्रिया सिखलाए और तत्त्व दशन व इतिहास का साधारण सा ज्ञान भी न हो वह कैसे ज्ञान-पिपासा को शान्त कर सकेगा। पेट तो सबके लगा है आज महगाई के युग मे व्यावहारिक ज्ञान देने वाले शिक्षक को हजार पन्द्रह सौ वेतन मिले और धम के अध्यापको को १००/- रु, १५०/- रु मात्र, तो कल्पना करें—सस्ता माल कितना लाभदायी होगा? समाज को आकर्षण पैदा करना होगा धम के अध्यापको को पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की

जिज्ञासा जगाने के लिए, और वह जब ही सम्भव **है जब** इस काल में सही ढंग से जीवन यापन करने **की** स्थिति उन्हें दिखाई दे, उनमें आत्मविश्वास **प्रकट** हो। आज ट्रेनिंग प्राप्त किये बगैर अध्यापक **को** व्यवहारिक पाठशालाओं में भी स्थान नहीं मिलता तो क्या एक केन्द्रीय अध्यापक धार्मिक शिक्षण संस्थान खड़ी नही की जा सकती, राजस्थान मे। आज कोई एक प्रभावक आचार्य भी यह कार्य अपने हाथ में ले ले तो सफलता दूर नहीं। पर यह तब ही सम्भव है जब धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता को समाज समझे और इस क्षेत्र में अध्यापन करने की रुचि रखने वालों को भविष्य आर्थिक दृष्टि से सुहावना दिखलाई दे। यदि धार्मिक शिक्षण को समाज ने प्राथमिकता न दी तो वर्तमान का बिगड़ता भविष्य और भी ज्यादा बिगड़ेगा। आज हमारा खानपीन, रहन-सहन, वाणी-व्यवहार कितना दूषित होता जा रहा है, यह किससे छिपा है—सब ओर से शिकायत है पर मर्ज को हम समझ ही नही पा रहे, यही तो विडम्बना है। धार्मिक शिक्षण की पद्धति को भी थोड़ा बदलना होगा। पर यह सब होगा सुयोग्य अध्यापकों के मिलने पर व समाज के हर वर्ग मे धार्मिक शिक्षण की महत्ता को समझकर उसके लिये सही पुरुषार्थ करने पर। धार्मिक ज्ञान बगैर हमारा वर्तमान बिगड़ रहा है और आगे बिगड़ता ही जावेगा।

भूतकाल की विरासत को कायम रखने का विचार हमने किया, वर्तमान को सुधारने संवारने का प्रश्न भी हमने सोचा पर भविष्य कैसे सुन्दर बने उज्ज्वल बने, यह भी हमें सोचना ही होगा। मन्दिरों-उपाश्रयों-शासन की अन्य सब निधियों को सम्हालने का दायित्व है समाज पर, पर समाज की सबलता को सम्हालने का दायित्व है समाज के सम्पन्न वर्ग पर। यदि हमारा साधर्मी सदृढ़ होगा—मजबूत होगा तो शासन की यह सब निधियां टिकी रहेंगी—पेट की समस्या हल होगी तो धर्म की भी सुलझेगी। आज के इस विषम युग में जरा साधर्मी के अन्दर हम झांक कर तो देखें कि वह अन्दर ही अन्दर टूट रहा है, झकझोरा जा रहा है। साधर्मी वात्सल्य का महात्म्य जितना जैन शासन मे गाया गया है उतना अन्य किसी धर्म में नही और हमेशा से यह समाज के जीवन के अन्दर पठा है तब ही तो हजारों वर्षों का इतिहास जीवित है, संस्कृति और उसके धाम जीवित हैं। आज भी उसका महात्म्य तो कम नही पर मार्ग बदल गया है। संघ का जीमन कर देना प्रभावना कर लेना मुख्य बन गया है। क्या एक रोज साधर्मी को अच्छे से अच्छा मिष्ठान्न खिलाकर उसकी महीने भर की भूख भगाई जा सकती है? हमारा साधर्मी भूखे रहना पसन्द करेगा, मांगेगा नहीं। पर वह आज अन्दर से खोखला होता जा रहा है। जर्जर हो रहा है। क्या हम इस ओर सोचेंगे?

आज साम्यवाद का प्रसार क्यों हो रहा है? कारण जिन शासन की परम्पराओं को हम भूल गये हैं। साम्यवाद सबको समान बनाना चाहता है यानी अमीर को भी नीचे लाना चाहते हैं पर जैन शासन सर्वोदय की भाषा में बोलता है नीचे को ऊँचा उठाओ। वस्तुतः हम भूल गये हैं उन सब सिद्धान्तों को। पर आज हमें गम्भीरता से सोचना होगा व साधर्मी वात्सल्य के मूल रूप को समझना होगा। महाराज कुमारपाल ने खादी की मोटी चद्दर अपने गुरु श्री हेमचन्द्र सूरि के कन्धे पर देख कर जब शिकवा शिकायत की तो आंख खोल दी हेमचन्द्र सूरि ने और कुमारपाल ने साधर्मी के उत्थान के लिये खजाना खोल दिया। यह था साधर्मी के प्रति प्रेम का अनुपम आदर्श। हमारे समाज के हर व्यक्ति को इस समस्या पर उदारता गम्भीरता से विचार करना ही होगा। यदि शासन का भविष्य हमें सुधारना है। आचार्य भगवन्तों को भी इस तरफ विशेष ध्यान देना ही चाहिए अपने प्रवचन के प्रभाव से वे समाज के लिए महान् कार्य

सम्पन्न करा सकते हैं। आज साधर्मी को अपने पावो पर खडा रहने मे सहयोग देना समाज की सबसे बडी सेवा है, उपलब्धि है। इसके लिए प्रयास होना चाहिये, योजनाए बननी चाहिये उन्हें मूतरूप दिया जाना चाहिये और फिर उनके परिणाम का भी आकलन किया जाना चाहिये। बहुत कुछ कहा जा सकता है, लिखा जा सकता है पर अब केवल कहने व लिखने का समय नही रह गया है अब तो इन सब योजनाओ को कायरूप मे परिणित करने का समय है। यदि हमने अब भी प्रमाद किया तो समय हमे कभी माफ नही करेगा।

भूतकाल को सजोये रखने के लिए हमारी सस्कृति की विरासतो को सुरक्षित रखना होगा। वतमान को सुन्दर बनाने एव सस्कारो को बनाये रखने के लिए धार्मिक ज्ञान नई पीढी को देना ही होगा तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए साधर्मी को मजबूत बनाना होगा खुशहाल बनाना होगा। इस ओर हम जागरूक रहे और आगे बढें तो अवश्य ही महावीर शासन का नाद गूंजेगा, गौरव बढेगा और जन-जन मे श्रद्धा का विकास होगा।

राजस्थान का हर प्रबुद्ध व्यक्ति इस ओर ध्यान देगा यही आशा और अपेक्षा।

यह ससार एक सराय (धर्मशाला) है जहां विभिन्न यात्री आते हैं तथा कुछ समय ठहरने के बाद इस सराय को छोड कर चले जाते हैं। आज तक कोई भी व्यक्ति हमेशा के लिये इस ससार मे नहीं रहा। अत इस ससार रूपी सराय पर मोह करना बुद्धिमत्ता नही है।

•

सुखी होने का एक ही माग है—*'मोह का त्याग'*।

•

मानव जीवन की सार्थकता धन सचय, व्यापार व परिवार की चिन्ता मे ही जीवन व्यतीत करने मे नहीं है, बल्कि योग साधना के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करने मे है।

भारत में जिन प्रतिमा का ऐतिहासिक महत्त्व

लेखक : श्री शंकरलालजी मुणोत
ब्यावर

भगवान् महावीर के जीवन काल से एक हजार वर्ष तक भारत में जिन प्रतिमा का कितना महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक स्थान रहा। मैं संक्षिप्त में इस विषय मे प्रतिपादन करता हूँ।

अति प्राचीन शिल्प स्थापत्य उल्लेखों से विदित होता है कि पहले देव मन्दिरों मे लकड़ी वाले रंग मंडपादि मे अद्भुत, कोरणी वाले होते थे। गिरनार मे श्री नेमनाथ प्रभु का और सोमनाथ का देवालय उस समय लकड़ी का बना हुआ था। जिन प्रतिमाएँ रत्न, ब्रोन्ज धातु, पाषाण, बहु-मूल्य काष्ठ की बनाई जाती थी। श्री महावीर के जीवन काल मे विदेह की वैशाली मे, चेटक, सिन्धु, सौवीर के वीतभयपट्टन में, उदायन, कुणाल की श्रावस्ती मे जितशत्रु, अवन्ति मे चंडप्रद्योत राज्य करते थे। चंडप्रद्योत की मृत्यु महावीर के निर्वाण के समय हुई थी। श्री संघदास गणिवाचक ने वसुदेव हिण्डी प्राचीन कथा साहित्य प्रमाणभूत ग्रंथ छठी शताब्दी का है। उसमें जीवन्त स्वामी की प्रतिमा का उल्लेख किया गया है।

आवश्यक चूर्णी, निशीथ चूर्णी में भी उल्लेख मिलता है कि महावीर तीर्थंकर के कुमारावस्था मे जब वह अपने राजप्रासाद मे धर्मध्यान मे निमग्न थे, उस समय उनकी एक चन्दन की प्रतिमा निर्माण की गई थी, जो वीतिभयपट्टन (सिन्धुसौवीर) के राजा उदायन के पास रही, उसे अवन्ति के नृप चंडप्रद्योत ने, उसकी जगह अन्य काष्ठघटित-प्रतिकृति (प्रतिमा) को, उसके स्थान पर छोड़ मूल चन्दन की प्रतिमा अपने राज्य मे ले आया और विदिशा के जिनालय में प्रतिष्ठित करवा दी गई।

आकोटा (बड़ौदा जनपद) से प्राप्त जीवन्त स्वामी की ब्रोन्जे धातु की प्रतिमा महावीर काल में निर्माण का ऐतिहासिक समर्थन मिलता है। इस प्रतिमा पर जीवन्त स्वामी की प्रतिमा का लेख है। उसे चन्द्रकुल की नागेश्वरी श्राविका ने दान दिया। लिपि से यह छठी शती के मध्यभाग की अनुमान की गई है। यह प्रतिमा कायोत्सर्ग ध्यानमुद्रा मे है। शरीर पर अलंकार, मस्तक पर ऊँचा मुकुट, गले मे हारादि, कानों मे कुण्डल, दोनों बाजुओं पर चौड़े भुजबन्ध, हाथों मे कड़े आदि आभूषण हैं।

इसी प्रकार ब्रोन्ज धातु की बनी एक पार्श्व-नाथ की प्रतिमा बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स-संग्रहालय में विद्यमान है। प्रतिमा कायोत्सर्ग-मुद्रा मे है। विद्वानों का मत है कि यह मूर्ति मौर्यकालीन है। भगवान् महावीर के निर्वाण के दो सौ पच्चीस वर्ष बाद की है। राजपुताने मे सिरोही राज्य के अन्तर्गत वसन्तगढ़ नामक स्थान मे श्री ऋषभदेव स्वामी की पद्मासन प्रतिमा है, जिस पर सं० ७४४ का लेख है। इस पर धोती पहनाया दिखाया गया है।

आठवें नन्द द्वारा "कलिंगजिन" का हरण

नन्द वंश ने भारत में पचानवे वर्ष महावीर निर्वाण साठ से महावीर निर्वाण एक सौ पचपन वर्ष (म० नि० ६० से म० नि० १५५) पाटलीपुत्र पर राज्य किया। नवनन्दों का अवन्ति और पाटलीपुत्र पर ९५ वर्ष तक आधिपत्य रहा। शोभनराय की पांचवी पीढी चन्द्रराय म० नि० १४९ वर्ष कलिंग राजधानी कनकपुर के सिंहासन पर आया। आठवें नन्द अपने मंत्री विरोचन की प्रेरणा से कलिंग पर चढाई कर कुमारगिरि पर श्रेणिक राजा द्वारा निर्मित जिनचैत्य को अस्तव्यस्त कर उसमें से श्री ऋषभदेव भगवान् की प्रतिमा को पाटलीपुत्र ले गया। यह घटना कलिंगचक्रवर्ती महाराजा खारवेल के हाथीगुफा के शिलालेख से प्रकाश में आई। यह शिलालेख ऐतिहासिक घटनाओं और जीवनचरित्र को अंकित करने वाला भारतवर्ष का सबसे प्रथम प्राचीन शिलालेख है। उडीसा (उत्कल) भुवनेश्वर तीर्थ के पास खडगिरि उदयगिरि पर्वत पर एक चौडी गुफा पर खुदा हुआ है। पहाड में काट काट कर बहुतेरे मकान बरामदेदार जैन मन्दिर और जैन साधुओं के मठ स्वरूप गुफागृह वहां प्राचीन काल से बने हुए हैं। नन्दवंश के समय कलिंग देश में जैनधर्म का प्रचार था। जिन मूर्ति पूजी जाती थी।

जिन-प्रतिमा की प्राचीनता के विषय में भारत के प्रख्यात पुरातत्त्व के विद्वान् डॉ० राजेन्द्र लालजी, जनरल कनिंघम, डॉ० प० भगवानलालजी, इन्द्रजी, मि० रखलदासजी बेनर्जी, प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् कालिदासजी, नागविन्सेंट स्मिथ, बडी मेहनत से शोध खोजकर इसी हाथीगुफा वाले शिलालेख को सन् १९१७ ई० में बिहार, उडीसा की रिसर्च सोसाइटी ने प्रथम बार जनरल पत्रिका प्रकाशित की। इस तरह अनेक प्रयत्नों के बाद राखलदास बनर्जी जो भारत के सर्वश्रेष्ठ सरकारी लिपियों में से थे व काशीप्रसादजी जायसवाल ने दिसम्बर सन् १९२७ में नया पाठ बिहार पत्रिका में प्रकाशित किया जिसमें राजा नन्द द्वारा ले गये, कलिंग जिन-मूर्ति का शिलालेख में वर्णन है। कलिंग देश की राजधानी कञ्चनपुर में ई० संवत् १७३ वर्ष पूर्व खारवेल का राज्याभिषेक हुआ। कलिंग चक्रवर्ती महाराजा खारवेल का ऐतिहासिक परिचय खण्डगिरि पर्वत पर हस्तिगुफा के शिलालेख से मिलता है। मगध उस समय में बृहस्पति मित्र पाटलीपुत्र पर राज्य करता था। इस शिलालेख की आठवीं और बारहवीं पंक्ति में प्रकट होता है कि खारवेल ने मगध पर दो बार चढाई की थी। एकबार गोवर्धनगिरि का गोवर्धन दुर्ग गया और राजगृह पर चढाई कर उसे चारों ओर से घेर लिया। उस समय यवन राजा क्रिमिल पाटलीपुत्र या गया की ओर चढाई करने जा रहा था। खारवेल की वीर कथा सुनकर उसने पैर पीछे किए मथुरा को छोड भाग गया। यह घटना ई० स० १७५ वर्ष पूर्व की थी। दूसरी बार यवनराज की चढाई की चर्चा पतञ्जलि-व्याकरण भाष्यकार ने "अर्णदयवन साकेत" और गर्गसंहिता में किया है। बृहस्पतिमित्र महाराज को अपने पैरों में गिरवाया। इस बार वह पाटलीपुत्र के सुगाय-महल पर अपने हाथियों को ले गया। अपने जिन-मूर्ति जो कलिंग जिन-मूर्ति के नाम से पुकारी जाती थी वापस धनरत्नों आदि के साथ लूटकर ले आया। पुनः कलिंग में प्राचीन जिनालय का जीर्णोद्धार कराके उस मूर्ति को प्रतिष्ठित की। शिलालेखों में १२वीं पंक्ति का लेख निम्नप्रकार है—

पंक्ति बारह—मगधान च विपुले भय जनेति हथी सुगंगीय पाययती (१) मगधम् च राजानम् वहसती नित पादे वदायेयति नन्दराज नीति च कलिंग जिन सनिवेस गृहरत्नान् पडिहरिहि अगमगध वसु च निपाती।

महाराजा खारवेल ने हिमाचल से कन्याकुमारी

तक अपने राज्य का विस्तार किया। महाराजाधिराज चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया।

आचार्य हेमवन्तसूरिजी जो प्रसिद्ध अनुयोग द्वारा एवं माथुरी वाचना के आचार्य स्कंदिल सूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। इस घटना का उल्लेख पट्टावलि मे कथन किया है। इस ग्रंथ में प्रायः ऐतिहासिक घटनाएँ है। आचार्य हेमवन्तसूरि का समय विक्रम की चौथी शताब्दी है।

यह प्रतिमा पहले कागज पर नही बनती थी। जैसा कि कुछ लेखकों का कथन है। क्योंकि कागज का सबसे पहले आविष्कार चीन मे हुआ था। वहां से मुस्लिम देशों में प्रचलन हुआ। जब यवनों का भारतवर्ष पर विक्रम १२वीं शताब्दी में हमला होने लगा। भारत में कागज का प्रचलन होने लगा। सबसे पहले रत्नकाण्ड श्रावकाचार्य विक्रम संवत् तेरहवी शताब्दि जैन ग्रंथ कागज पर लिखा गया जो कागज जैन भण्डार में है। संवत् १४२७ मे कागज पर लिखित कल्पसूत्र लन्दन मे इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

मथुरा का स्तूप उर्फ कंकाली टीला देवनिर्मित यह स्तूप अतिप्राचीन मथुरा में जैन तीर्थ का विविध तीर्थ कल्पाकल्प में छेदग्रंथ बृहद्कल्प में भी इस तीर्थ का वर्णन किया गया है।

विविध तीर्थ कल्प में उल्लेख किया है कि मथुरा के स्तूप का जीर्णोद्धार, पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समय मे उसका जीर्णोद्धार कराया गया था। तथा उसके एक हजार वर्ष पश्चात् पुनः उसका उद्धार जयभद्रिसूरि द्वारा कराया गया था। राजमल्ल कृत जम्बूस्वामी चरित्र के अनुसार उनके समय मे मुगल सम्राट अकबर के काल में मथुरा में ५१५ स्तूप जीर्णशीर्ण अवस्था में विद्यमान थे जिनका उद्धार टोडर नाम के एक धनी साहू ने अगणित द्रव्य व्यय करके कराया था। श्री हरिभद्र सूरि कृत पाक्षिक नियुक्ति वृत्ति तथा सोमदेव कृत यशस्तिलक में भी इस स्तूप का वर्णन आया है। विक्रम की चौदहवी शती तक जैन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रहा। परन्तु विदेशियों के आक्रमण से और मुख्य इस देश पर मुसलमानों की राज्यसत्ता स्थापित होने के बाद इस तीर्थ को धीरे-धीरे भूलने लगे। उत्तरीय जैन तीर्थ धीरे-धीरे स्मृतिपट से उतर गया। बाह्य विध्वंसक आघातों से जब उस स्थान के स्तूप व जिनालय नष्ट हो गये, उस स्थान ने एक टीले का रूप धारण कर लिया। तब मंदिर का एक स्तम्भ उसके ऊपर स्थापित करके यह टीला कंकाली देवी के नाम से पूजा जाने लगा। अंग्रेजों के शासन काल में सन् १८७० में खुदाई करके बहुत से शिलालेख खण्डित जिन-प्रतिमाएँ आयोगपट्टा स्तम्भादि निकले है, जिनका वर्णन विन्सेंट स्मिथ की पुस्तक "जैन एण्ड अदर अण्टिक्विटीज आफ मथुरा आर्किआलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया" सन् १८७० आयकपट्ट भी है। यह एक शिला है सिंहनादिक की स्थापना खुदाई मे की गई है। मध्य मे जैन तीर्थंकर की प्रतिमा कोतरी हुई है। आसपास भिन्न तरह की पवित्र निशानियां अष्ट मंगल देखने मे आते है। लेख भी है जो ई. पू. के प्रारम्भ के लिखे होने चाहिये। आयोग पट्ट पर लेख है "सिंहनादिकेन आयोगपटो प्रतिस्थापितो अरिहन्तपूज्यो।" कुषाणकाल की तो अनेक जिनमूर्तियां कंकाली टीले की खुदाई मे निकली है जो मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है। आज से २ हजार वर्ष पहले मूर्तियाँ इस प्रकार से बनाई जाती थी कि गद्दी पर बैठी हुई तो क्या खड़ी मूर्तियां भी खुले रूप मे नग्न नहीं दिखती थी। उनके वाम स्कन्ध से देवदूष्यवस्त्र वस्त्र का अंचल दक्षिण जानु तक इस खूबी से नीचे उतारा जाता था और कि आगे तथा पीछे का गुह्य अंग भाग उससे आवृत हो जाता था और सब भी इतनी सूक्ष्म रेखाओं मे दिखाया जाता था कि ध्यान से देखने से ही समझ पड़ सकता था। इसके अतिरिक्त मथुरा के स्तूप से एक जैन [illegible] भी

मूर्ति मिली है जिस पर "कण्ह्" नाम खुदा मिलता है। यह मूर्ति अर्धनग्न होते हुए भी इसके कटि-भाग मे प्राचीन निर्ग्रन्थ श्रमण द्वारा नग्नता ढाकने के निमित्त रखे जाते हैं अग्रावतार नामक वस्त्रखड की निशानी देखी जाती है। यह अग्रावतार प्रसिद्ध स्थविर आर्यरक्षित के समय तक श्रमणो मे व्यवहृत होता था। मुँह पर मुँहपति नही बधी है।

तक्षशिला चन्द्रप्रभ जिनालय—तक्षशिला से जैन धम का बडा प्राचीन सम्बन्ध रहा है। जैन पुराणो के अनुसार प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने अपने पुत्र वाहुबलि की राजधानी को स्थापित किया था। यही नही किन्तु अतिप्राचीनकाल मे सातवी शताब्दी तक पश्चिमोत्तर भारत मे अफगानिस्तान तक जन धम के प्रचार के प्रमाण मिलते है। ऐतिहासिक ग्रन्थ श्री प्रभावकचरित्र विक्रम सवत् १३३४ मे रचित श्री मालदेवसूरि जो विक्रम तीसरी शताब्दी तक्षशिला का वणन आता है उस समय तक्षशिला धम क्षेत्र था। पाच सौ जैन चैत्य थे। वहा भयकर महामारी फूट निकली, उसे शात करने के लिए सघ ने एक श्रावक वीरचन्द्र को राजस्थान नाडोल श्री मानदेवसूरि के पास भेजा। आचार्य ने शातिस्तवन स्तोत्र दिया जिससे उस समय महामारी शान्त हो गई। श्रावक धीरे-धीरे दूसरे स्थानों पर चले गये। तीन वर्ष बाद सएको ने तक्षशिला पर हमला कर नाश किया।—उस समय पीतल और पाषाण की जिन मूर्तियाँ भग्न विद्यमान हैं। विक्रम ३री ४थी शताब्दी के बाद जैनो के चैत्यो व तीर्थो पर बौद्ध लोगो ने अपनी सत्ता जमा ली। जैनो का अति प्राचीन तीथ तक्षशिला का धमचक्र तीर्थ जो चन्द्रप्रभ जिनका धाम था महानिशीथ सूत्र मे उल्लेख है। वहाँ पर बौद्धो ने अधिकार किया। चीनीयात्री ह्वेनसाग विक्रम की छठी शती मे भारत में यात्रा के लिए आया। हूप चक्र बौद्धो के तावे मे था उसने उल्लेख किया, लोग उसे चन्द्रप्रभ बोधिसत्त्व का तीर्थ कहते थे।

उपरोक्त ऐतिहासिक घटनाओं से सिद्ध हो गया कि प्राचीन समय मे भारत मे "जिनप्रतिमा" का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। राजा प्रजा अपने इष्टदेव पर अपूर्व श्रद्धा रखते थे। यही कारण है कि कलिग देश की प्रजा ने जिन प्रतिमा को "कलिग जिन" के नाम से पुकारा है। "कलिग जिन की प्रतिमा" को प्रजा और राजा देश के लिये मगलकारी देश की रक्षा करने वाली जिनेश्वर का प्रतीक मानते थे। अवन्ति पति नृप चडप्रद्योन ने भी वीतिभयपट्टन (सिन्धु सौवीर) के नृप उदायन से किसी प्रकार छल से चन्दन की जिन प्रतिमा मगवाकर विदिशा में जिन गृह मे प्रतिष्ठित करादी।

औषधि, आहारादि द्वारा जो व्यक्ति मुनिराजो की भक्ति सेवा करते हैं उन्हें भी अनुमोदना के द्वारा चारित्र की आराधना का फल अवश्य मिलता है।

× × ×

जीवन निर्माण का प्रथम सोपान (सीढी) है—सप्त व्यसन का त्याग। सप्तव्यसन ये है—शराब, मास, जूआ, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन।

अनंत तारक देवाधिदेव—श्री सीमंधर स्वामी भगवान्

विमलकान्त देसाई, बी० ए०

अनेक पुण्यवंत जिज्ञासु आत्माओं का यह प्रश्न है कि "सीमंधर स्वामी भगवान् कौन हैं? कहाँ पर विचर रहे है? और महाविदेह क्षेत्र कहाँ है? और अगर है तो वहाँ पर आधुनिक युग मे हवाई जहाज के जरिये क्यों नही जा सकते है? एवं क्या हम इन्हें तीर्थंकर परमात्मा समझे?" ऐसे कई प्रश्न हमारे दिमाग के सामने खड़े हो जाते है।

इस सम्बन्ध मे जैन शास्त्रों का कथन है कि महाविदेह क्षेत्र मे इस समय मे भी साक्षात् रूप से २० विहरमाण तीर्थंकर, ५०० धनुष समुन्नत महा विराटकाय विचर रहे हैं। पहले तो हमें यह जानना होगा कि महाविदेह क्षेत्र कहाँ पर है। यह समझने के लिये हमें जिनागमों का अनुसरण करने वाले प्रकरण आदि ग्रन्थों का विहगावलोकन करना पड़ेगा। भूगोल से सम्बन्धित प्रकरण आदि ग्रन्थों मे असंख्यात द्वीप और समुद्रों का वर्णन आता है तथा नरकादि का वर्णन आता है। असंख्यात द्वीप समुद्रों मे मनुष्यों की बस्ती सिर्फ दो समुद्रों सहित ढाई द्वीप में ही है।

एक लाख योजन प्रमाण थाली के आकार में श्री जम्बू द्वीप है। इसकी दोनों तरफ दो-दो लाख योजन प्रमाण परिक्रमा करके वलयाकार के रूप में लवण समुद्र है। इसके चार-चार लाख योजन प्रमाण परिक्रमा करके वलयाकार के रूप में श्री धातकी खंड है। इसके दोनों तरफ आठ-आठ [illegible] प्रमाण परिक्रमा करके वलयाकार के रूप में कालोदधि समुद्र है। इसके दोनों तरफ १६–१६ लाख योजन प्रमाण परिक्रमा करके वलयाकार के रूप में पुष्करवर द्वीप है। पुष्करवर द्वीप के मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत है। इसके मायने श्री पुष्करवर दीप के दोनो बाजू आठ-आठ योजन प्रमाण अर्ध पुष्करवर द्वीप है इस तरह दो समुद्र सहित ढाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन मे ही मनुष्यो की बस्ती होने से वह मनुष्य क्षेत्र कहलाता है। यह पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में भी १५ कर्मभूमि, ३ अकर्म भूमि और ५६ अतद्वीपो मे ही मनुष्यो की उत्पत्ति होती है।

कर्मभूमि उसे कहते है जहाँ पर असि, मसि और कृषि इन तीनो कर्मों का सहारा लेकर ही जीवनयापन होता है। असि मतलब तलवार, खड्गादि शस्त्र, मसि माने स्याही लेखन कला आदि और कृषि याने खेती बाड़ी—यह तीनों कर्म जहाँ पर होते हो और इसी के अपेक्षा से जीवन व्यवहार चलता हो—उस क्षेत्र को कर्मभूमि कहते हैं। इसके विपरीत जहाँ पर यह तीनो कर्मों की अपेक्षा न हो और कोई भी कार्य करने की आवश्यकता न हो उसे अकर्म भूमि कहते है। जहाँ पर मनुष्यों का जन्म श्री युगल के रूप में साथ में होता है। इसलिये इसे [illegible] कहा जाता है। साथ में युगल-स्त्रियाँ और [illegible] जीवन निर्वाह करते है। [illegible]

इन्हे गुस्सा (कषाय) भी कम आता है एव इनकी विषय वासना भी कम होती है। इसी कारण इनके कर्म बधन भी अल्प होते हैं और मरकर देवलोक मे ही जाते हैं। वहाँ के त्रियच भी देवलोक मे जाते हैं।

उपर्युक्त तीनो कम श्री भरत क्षेत्र श्री एरवत क्षेत्र एव महाविदेह क्षेत्र मे ही होते हैं। एक जम्बुद्वीप मे—१ भरत, १ एरवत और एक महाविदेह क्षेत्र होता है।

श्री जम्बुद्वीप के मध्य मे श्री मेरू पवत की पूव दिशा मे श्री पुष्कलावती नाम की विजय शोभायमान है। इस विजय की पूर्व दिशा मे नीलवत वषधर पवत ह पश्चिम दिशा मे सीता नदी है, दक्षिण दिशा मे लवण समुद्र और उत्तर दिशा मे "एक शैल पर्वत है"। इस पवत के ऊपर १२० शाश्वत जिनेश्वर देवो की प्रतिमाओ से युक्त शाश्वत जिनमदिर है। यह एक शाश्वत तीर्थ है।

श्री भरत क्षेत्र की वतमान चौविशी सत्रहवें तीर्थंकर कु थुनाथजी भगवान के निर्वाण के बाद और अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथजी भगवान के जन्म से पूव की यह वात ह। श्री महाविदेह क्षेत्र की श्री पुष्कलावती विजय म अनेक समृद्धियो से परिपूर्ण, अति रमणीय, एव देवनागरी की भाँति सुन्दर ऐसी पु डरीकिणी नाम की नगरी है। इस नगरी के महाराजाधिराज श्री श्रेयास महाराजा का वहा पर एकछत्र शासन चल रहा है। महाराजाधिराज श्री श्रेयाम वडे ही दयावान, वात्सल्य परिपूर्ण, सदाचारी, पुरुषो मे सिंह समान, परम श्राद्धरत्न हैं। इनकी पटरानी का नाम श्री सत्यकी जी है। सत्यकी जी परम सुशील, महासती, महान् पुण्य वाली, रत्नकुक्षिधारिणी है। परम श्राद्धरत्ना है। चैत्र बदि १० (मारवाडी वैशाख बदी १०) के शुभ दिन महाराणी सत्यकी जी की कोख से, मध्य रात्रि के समय, उत्तराषाढा नक्षत्र मे धनराशि के चन्द्रमा का शुभ योग हुआ उस समय, तीनो जगत के तारणहार तीनो जगत मे उजाला करने वाले, अनत करुणा के भडार, देवाधिदेव श्री सीमधरस्वामीजी भगवान का जन्म हुआ। सवत्र खुशियाँ छा गईं। सातो नरक मे भी उजाले हो गये क्योकि प्रभुजी के जन्म समय चारो तरफ खुशियाँ ही छा जाती है। धीरे-धीरे प्रभुजी वडे होते गये पठन पाठन के साथ-साथ युवावस्था मे पदार्पण किया। यौवन आते ही माता-पिता को शादी की चिन्ता लगी—और उनसे शादी का आग्रह किया—अनेक गुणो स युक्त ऐसी राजकुमारी रुक्मणी के साथ विवाह सम्पन्न कराया। प्रभुजी तो अनत ज्ञान के धनी थे—उन्हें सभी प्रकार का ज्ञान था कि भोगावली कम अवश्य भोगने ही पड़ेंगे—इसी के परिणामस्वरूप माता पिता की भावनाओ को उन्होंने स्वीकृति दे दी और उनका पाणिग्रहण सस्कार हो गया। धीरे-धीरे समय व्यतीत होता गया—अनत तारक श्री सीमधर स्वामी भगवान के उम्र मे एक वष कम ८३ लाख पूव पूर्ण हो चुके थे तब इस भरत क्षेत्र मे वतमान चौविशी के २० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी जी और २१ वें तीर्थंकर नमिनाथजी के अतराल मे इसी श्री भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी मे, श्री दशरथ महाराजा राज्य करते थे, उनके राज्य काल मे उनके सुपुत्र वलदेव श्री रामचन्द्रजी के जन्म से पहले—नवलोकातिक देवो ने अनततारक श्री सीमधर स्वामी भगवान को तीथ प्रवर्तन के लिये विनती की—उस समय प्रभुजी ने अपने ज्ञान के वल से यह जानकर कि मेरे भोगावली कर्म क्षीण हो गये हैं और मेरे सयम ग्रहण करने की एक वर्ष की आयु रह गई है अतएव यह जानकर एक वष पर्यन्त सावत्सरिक दान देकर फाल्गुन सुदी २, को पचमुष्ठि लोच कर दीक्षा ग्रहण की, उसी समय प्रभुजी को मन पर्यवज्ञान की प्राप्ति हुई। एक हजार वर्ष पर्यन्त सयम का पालन करके, घाती कर्मों का नाश करके चैत्र सुदी १३ के दिन केवल ज्ञान की प्राप्ति की और

चतुर्विध संघ की स्थापना की।

श्री सीमंधर स्वामी भगवान के महा प्रभाव से अनेक आत्मायें अपना कल्याण कर रही हैं। अनेको ने दीक्षायें ली और प्रभुजी के स्वहस्त से दीक्षित ८४ गणधर महाराजा, १००-१०० करोड़ साधु साध्वीजी महाराजा, और १० लाख केवल-ज्ञानी महाराजाओं के विशाल परिवार युक्त अनंत तारक श्री महाप्रभुजी श्री सीमंधर स्वामी भगवान श्री पुष्कलावती विजय की परम पुण्य भूमि पर प्राणी मात्र के कल्याण के लिये प्रतिपल महत् उपकार कर रहे हैं। १००-१०० करोड़ श्रावक-श्राविकायें बारह व्रतों का उच्चारण करके श्रावक धर्म की आराधना कर रहे हैं और आत्मकल्याण मे संलग्न हैं।

ऐसे अनंत सीमंधर स्वामी भगवान की सेवा भक्ति आराधना करके हम भी अगले जन्म में इस साक्षात् भगवान की निश्रा पाकर संयम धर्म की आराधना कर, स्व पर कल्याण की भावना करें यही एक कामना हमारे दिल मे है और इस कृपालु देवाधिदेव को प्रतिक्षण, बड़े ही विनीत भाव से नत मस्तक होते हैं।

अनंततारक देवाधिदेव श्री सीमंधर स्वामी आदि २० विहरमान तीर्थंकर परमात्माओ के पांचो कल्याणक एक ही समय मे (समकाल) होने से वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, राशि आदि एक समान ही होते है। जिसका विवरण निम्न प्रकार से है :—

१ च्यवण कल्याणक—श्रावण वदि १

२. जन्म कल्याणक—चैत्र वदि १०

३ दीक्षा कल्याणक—फाल्गुन सुदी १०

४ केवल ज्ञान कल्याणक—चैत्र सुदी १३

५. निर्वाण कल्याणक—इस भरत क्षेत्र की आगामी चौबिसी के सातवे तीर्थंकर श्री उदय परमात्मा के निर्वाण बाद नवे तीर्थंकर श्री पेढ़ाल परमात्मा के जन्म से पहले—श्री सीमंधर स्वामी आदि २० विरहमान तीर्थंकर श्रावण सुदी ३ के शुभ दिन निर्वाण पद को प्राप्त करेंगे।

१. देहमान—५०० धनुष्य

२. देहवर्ण—सुवर्ण

३. जन्म नक्षत्र—उत्तराषाढा

४. जन्म राशि—धनराशि

५. राज्यपालन काल—८३ लाख पूर्व

६. केवली पर्याय—एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व।

७. दीक्षा पर्याय—१ लाख पूर्व

८. आयुष्य पयाय—८४ लाख पूर्व

९. पू० गणधर परिवार—८४ गणधर भगवंत

१०. केवल ज्ञानी परिवार—१० लाख मुनिवर

११. साधु परिवार—१०० करोड़

१२. साध्वीजी परिवार—१०० करोड़

१३. श्रावक परिवार—९०० करोड़

१४. श्राविक, परिवार—९०० करोड़।

उपर्युक्त बातें शास्त्र लिखित विहरमान तीर्थंकरों की है।

अंततः भरत क्षेत्र मे जिसमें कि हम सब लोग इस समय पंचम आरे के काल मे निवास कर रहे हैं—जम्बु स्वामी के बाद मोक्ष के द्वार बंद हो गये अब यदि किसी आचार्य भगवंत साधु, साध्वी तथा श्रावक श्राविका को मोक्ष की प्राप्ति करनी है तो उसे महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर ही वहाँ पर श्री सीमंधर स्वामी आदि किसी विहरमान भगवान की आराधना करके ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, ऐसा जैन शास्त्रों का कथन है। अतः भरत क्षेत्र

मे हम सब को ऐसी शुभ करणी—देव गुरु धम की आराधना करनी चाहिये कि जिससे अपना जन्म महाविदेह क्षेत्र मे हो सके ताकि वहा आराधना करके मोक्ष की प्राप्ति हो सके। क्योकि आज के युग के आधुनिक हवाई जहाज और राकेट सीमित क्षेत्र मे ही जा सकते हैं। महाविदेह क्षेत्र तक पहुँचने के लिये बीच मे ऐसे कई व्यवधान आते हैं जिससे हम आधुनिक यातायात के साधन के जरिये भी पहुँच नही पाते हैं। बीच मे ऐसी बडी बडी पर्वत शृङ्खलाएँ एव बडे-बडे महा समुद्र आते हैं जिसको कि पार करना अति कठिन कार्य है। यही कारण है कि हम महाविदेह क्षेत्र म पहुँच नही पाते हैं और महाप्रभु से यही कामना करते हैं कि हमारा जन्म महाविदेह क्षेत्र मे हो ताकि धार्मिक क्रिया कलापो एव आराधना करके मुक्तिगामी हो सके।

इसी भावना से प्रेरित होकर राजस्थान की राजधानी जयपुर मे भी जनता कॉलोनी मे श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ के तत्वाधान में श्री सीमधर स्वामी भगवान का शिखरयुक्त मदिर निर्माणाधीन है। और शीघ्र ही पू० आचाय भगवत श्री कलापूर्ण सूरिश्वरजी महाराज सा० के मार्गदर्शन एव पावन निश्रा मे अजन शलाका एव प्रतिष्ठा महोत्सव होने जा रहा है।

मूलत इस मदिर की डॉ० भागचन्दजी छाजेड द्वारा अपने प्लाट मे श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी जिनालय की स्थापना की गई थी और १९७५ मे यह जिनालय श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ को समर्पित किया गया था और पिछले तीन वर्षों से सघ की गत महासमिति के निर्देशन मे श्री शाति-लालजी सिंघी के सयोजकत्व मे काफी निर्माण काय पूर्ण हो चुका है और वतमान महासमिति के निर्देशन मे श्री चिन्तामणिजी ढड्ढा के सयोजकत्व मे इस निर्माण काय को पूर्ण कराकर अजन-शाला का एव प्रतिष्ठा महोत्सव कराने के लिये सघ की नई महासमिति कृतसकल्प है।

माग अनेक हैं मजिल एक है—वह एक तथ्य है। लेकिन आधुनिक परिवेश मे समान्यत माग एक ही (बेईमानी का) रह गया है तथा मजिलें अनेक बन गई हैं, जैसे—धन, सत्ता, शक्ति, लोभ, इत्यादि। मजिल एक होनी चाहिए— 'सच्चे सुख की प्राप्ति'।

रूढि या परम्परा का नाम धर्म नही है। परम्परा या सम्प्रदाय तो धर्म के अभिव्यजक हैं। जो व्यक्ति किसी सम्प्रदाय विशेष मे ही उलझ जाता है वह जीवन के सत्य से व धर्म के माग से च्युत हो जाता है। विभिन्न धर्मों व दशनो के अध्ययन के द्वारा तथ्यान्वेषण की प्रवृत्ति से ही तथ्य (सत्य) हस्तगत होता ह।

परमात्म प्रेम

□ 'श्री पूर्णेन्दु'

प्राण से भी अधिक परमात्मा के प्रति प्यार होना चाहिए। अपनी चेतना और परमात्मा दोनों का एक शाश्वत सम्बन्ध है। जब चेतना सुषुप्त हो जाती है, तो यह सम्बन्ध भी विस्मृत हो जाता है। अनादिकाल से हमारी यही स्थिति रही है। जब हमारी सुषुप्त चेतना जागृत होती है, तब परमात्मा से मिलने के लिए उत्कंठित बन जाती है, फिर परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही सब कुछ करती है और दूसरी किसी भी वस्तु में आश्वस्त नही बनती है।

प्रेम और भक्ति वह है, जो परमात्मा को समीप में लाता है। सात राज दूर परमात्मा भी भक्ति के कारण भक्त के हृदय मंदिर मे विराजमान होते है।

भक्ति का आनन्द दुनिया के सभी पदार्थों की प्राप्ति से भी अधिक होता है। भक्त आत्मा के पास यदि कोई देवात्मा संतुष्ट होकर कुछ मांगने की विनती करे, तो वह भक्त यही कहेगा किसी की भी अपेक्षा नही है, मुझे तो केवल परमात्मा की ही भक्ति चाहिए। परमात्मा के प्रेम से भक्त का हृदय इतना भर जाता है, इतना तृप्त हो जाता है कि उसको दूसरी सांसारिक वस्तुओं की कामना कभी नहीं होती। इतना ही नहीं, भक्ति में लीनता के कारण उसको मुक्ति की भी कामना नहीं होती। भक्ति और मुक्ति दोनों में उसको अधिक प्रिय भक्ति ही लगती है। इसीलिये तो पू. उपाध्यायजी यशोविजयजी म. के उद्गार निकल गए—

"मुक्ति थी अधिक तुझ भक्ति मुझ मन वसी"

क्योंकि वे समझते हैं कि अगर मुक्ति मिलेगी तो भक्ति नहीं मिलेगी, जो उसको सबसे अधिक प्रिय है, फिर भी जहां भक्ति होती है वहाँ मुक्ति कन्या सामने आकर उसके कंठ में माला डालती है। भक्ति लोह चुम्बक है, जो मुक्ति को खीचकर ही रहती है।

जब किसी की आत्मा साधना के विकास क्रम मे आगे बढ़कर परमात्मा बनती है, तो प्रेम और भक्ति के माध्यम से ही। दूसरा कोई विकल्प नही है। पू. उपाध्यायजी म. ने भी भक्ति को परम आनन्द की सम्पत्ति रूप मुक्ति का बीज समान कहा है।

चैतन्य का विकास प्रेम से ही होता है, लेकिन वह विकृत नहीं होना चाहिए। परमात्मा से किये हुए प्रेम में विकृति का कोई स्थान नही है, क्योंकि वह प्रेम निर्मलतम होता है। वह तो विकृतियो को दूर फेंक देता है।

हमारी चेतना जहां तक संसार में है, बिना प्रेम नही रह सकती। कामवासना, राग और विकार रूप प्रेम तो एक अंधकारमय गर्त है, जिसमे हम आज तक पड़ते आये हैं। वह प्रेम प्रेम नही है, उसको प्रेम का नाम भी नही दिया जा सकता। पदार्थों की आसक्ति रूप प्रेम तो जहर है, जो आत्मा की भाव मृत्यु का कारण बनता है, वह आसक्ति श्लेष्म जैसी है, जिसमें हमारी आत्मा चीटक कर भाव मृत्यु पा जाती है। इसलिए वह राग आदि को कैसे वास्तविक प्रेम कहा जाय? प्रेम तो विशुद्ध पारदर्शक स्फटिक जैसा होता है, जिसमें सहज ही परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है। ऐसे प्रेम का विकास हम जीवन में करते रहें। •

इन्द्रभूति गौतम : व्यक्तित्व दर्शन

□ लेखिका—कु सरोज कोचर, जयपुर

महान् व्यक्तित्व के धनी, विराट् तेजस्वी आर्य इन्द्रभूति गौतम भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य एव प्रथम गणधर थे। इनका जन्म मगध के गोवर ग्राम मे हुआ था। गौतम गोत्री इन्द्रभूति के पिता का नाम वसुभूति एव माता का नाम पृथ्वी था। भगवती सूत्र के अनुसार इन्द्रभूति का शरीर सात हाथ ऊँचा, समचौरस सस्थान एव वज्रऋषभनाराचसघयन से युक्त था। उनका गौरवर्ण कसौटी पर खिची हुई स्वर्ण-रेखा के समान दीप्तिमान एव पद्मकेसर के समान समुज्ज्वल था। वे उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी महातपस्वी, उदार, घोर, घोरगुणयुक्त, घोरब्रह्मचारी, शरीर की ममता से मुक्त, सक्षिप्त (शरीर मे गुप्त) विपुल तेजोलेश्या का धारण करने वाले, चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता, चार ज्ञान से सम्पन्न, सव अक्षर सयोग के विज्ञाता थे। बाह्य दर्शन मे व आकर्षक, सुन्दर एव तेजस्वी थे तो अन्तरग जीवन परिचय म उससे अधिक तपोमूल साधना की चरम सीमा को प्राप्त थे।

आगम साहित्य का अवलोकन करने पर यह कहा जा सकता है कि इन्द्रभूति गौतम के अन्तश्चेतना मे प्रबल जिज्ञासा थी। नवीन विषय का समझने एव ज्ञात करने का उनका सहज स्वभाव था। भगवान महावीर केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् पावापुरी मे पहुँचे। देवताओ ने समवशरण की रचना की। आकाश मार्ग मे भगवान महावीर की जयजयकार करते हुए पुष्प वर्षाते हुए असख्य देव समवशरण की ओर आने लगे। उस समय यज्ञवाटिका मे बैठे हुए गौतम इन्द्रभूति ने सोचा कि यज्ञ माहात्म्य से आकृष्ट होकर यज्ञाहुति के लिए देव वृन्द आ रहे हैं। उन्होंने यज्ञ की महिमा से मण्डप को गुजायमान किया लेकिन उन्हीं के अहकार पर प्रहार करते हुए विमान आगे बढ गया। स्थिति ज्ञात करने पर गौतम ने सोचा ऐसी कौन सी शक्ति महावीर में विद्यमान है जिसके कारण मेरे यज्ञ मण्डप को छोडकर विमान आगे चला गया। उन्होंने भगवान महावीर की शक्ति को ललकारा। प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि वे अपनी परम्परा के प्रतिरोधी भगवान महावीर के प्रति वाद-विवाद की भावना को लेकर आगे बढ़े, उन्हें पराजित कर विद्वता प्रदर्शित करने की भावना उनमे रही। किन्तु जब वे महसेन वन के समीप पहुँचे, महावीर के समवशरण की अलौकिक छटा देखी, असख्य देवताओं को महावीर के चरणारविन्द मे भक्ति एव विनय के साथ वन्दना करते देखा तो उनकी पूर्व धारणाएँ निरस्त हो गई। उस समय उनका अभिमान, अहकार आदि कुत्सित भावनाओ का मालिन्य धुल गया। मन मे हलचल होने लगी। उनमे आकर्षण एव श्रद्धा का भाव विकसित होने लगा। इच्छा हुई कि महावीर के चरणो मे सिर झुकाकर समर्पित हो जाये किन्तु वे ऐसा नही कर सके। जब गौतम के कुछ भी न बोलने पर भगवान महावीर ने गौतम के मनोभावो का स्पष्ट उद्घाटन किया तब गौतम को महावीर की सर्वज्ञता पर श्रद्धा हुई। पूर्वाग्रहो से मुक्त गौतम को महावीर के वचनो मे सत्य की प्रतीति हुई।

परिणामस्वरूप उन्होने भगवान महावीर स्वामी को विनयपूर्वक प्रार्थना की —"हे प्रभो ! मुझे भी अपना शिष्य बनाइये, अपने आचार विधि की दीक्षा दीजिये और मुक्ति का सच्चा मार्ग दिखलाइये।" इस प्रकार 50 वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण कर वे महावीर के शिष्य बने। उन्होंने भ० महावीर से जीव के अस्तित्व, जीव की अनेकता, नित्यानित्यत्व आदि अनेक प्रश्न किये। तीर्थंकर महावीर के युक्तिसंगत प्रत्युत्तर को सुनकर गौतम का सन्देह समाप्त हो गया। ज्ञान पर गिरा हुआ पर्दा हट गया। उन्हे महावीर की सर्वज्ञता एव वीतरागता पर अटूट विश्वास हो गया। इस प्रकार से जिज्ञासु होने के कारण ही वे यज्ञ मण्डप से महावीर की ओर बढ़े।

इन्द्रभूति ने जीवन के प्रारम्भ मे ज्ञान एवं श्रुत की आराधना की उसके चरम शिखर तक पहुँचे। अपने जीवन को तप: साधना में लगा कर निरन्तर तपः ज्योति प्रज्वलित करते रहे। वे दो दिन उपवास करते, एक दिन भोजन, भोजन में भी सिर्फ एक समय दिन के तीसरे पहर में स्वय भिक्षा पात्र लेकर सामान्य कुलों मे एक साधारण भिक्षुक की तरह विचरण करते। जो भी रूखा-सूखा आहार प्राप्त होता प्रसन्नतापूर्वक उसे ग्रहण करते। तत्पश्चात् भगवान महावीर के समीप आकर उन्हे भिक्षा बताते, उनसे पारणे की आज्ञा लेकर अपने से छोटे साधुओं और शिष्यों को भी भोजन के लिए निमन्त्रित करते हुए कहते 'अच्छा हो आप मेरे भोजन मे से स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।' इतना ही नही वे अनासक्ति पूर्वक भोजन करके स्वाध्याय मे लीन हो जाते।

उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त उन्हे शरीर के सुख-दुःख, भूख-प्यास साधना से विचलित नहीं कर सकी। न ही वे शरीर के रहते हुए भी शरीर की भावना से शरीर को अलंकृत करते। श्रीमद् राजचन्द्र ने आत्मसिद्धि मे इसी स्थिति को देहातीत स्थिति बतलाते हुए ऐसे परम योगी को नमस्कार करते हुए कहा है—

देह छता जेहनी दशा वर्ते देहातीत।
ते योगी ना चरण मां वंदन छे अगणीत॥

जैन दर्शन की मूल आत्मा है—"पढमं नाणं तओ दया" पहले ज्ञान फिर क्रिया। जैन दर्शन का यह मूल स्वर गौतम के जीवन मे मुखरित था। उन्होंने ज्ञान की आराधना करने के पश्चात् आत्म-स्वरूप का बोध प्राप्त किया फिर उग्र तपश्चरण में स्वयं के शरीर को तपा दिया। आचार्य हेम-चन्द्राचार्य के अनुसार इन्द्रभूति गौतम चतुर्दश विद्याओं में पारंगत थे। चौदह विद्या मे उस युग की समस्त विद्याओ का समावेश था।

अत्यन्त उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट साधक होने पर भी भगवान महावीर से स्नेह सम्बन्ध होने के कारण उन्हें केवलज्ञान नही हो सका। भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् कुछ समय तक स्नेह बन्धन मे बंधे उन्होंने एकाएक विचार किया अरे यह मोह कैसा ? मुझे राग छोड़ना चाहिये। इस प्रकार राग को क्षीण करके उसी रात्रि के उत्तरार्ध मे केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् 12 वर्ष तक गौतम पृथ्वी पर विचरण करते रहे उपदेश देते रहे। जीवन के अन्तिम समय मे राजगृह में एक मास तक तप करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

'पढम नाणं तओ दया' यदि ज्ञान प्रथम सोपान है तो दया (तथा आचरण) द्वितीय सोपान है। यदि जीव अजीवादि तत्त्वों का ज्ञान नहीं तो जीव की रक्षा कैसे सम्भव हो सकती है ? तथा ज्ञान के अभाव में अविवेक होने से सम्यक् आचरण भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं रहता।

जीवन कल्याण के लिये मनन करने योग्य 10 बातें

१. आज मुझसे किसी को कष्ट तो नही पहुँचा ।
२ अमुक मनुष्य ने मुझे कटु वचन कहे थे तो उस पर मुझे क्रोध तो नही आया ।
३ यदि कोई भला काम मुझसे हो गया है तो मेरे दिल मे अभिमान तो नही आया ।
४ मैंने अनुचित प्रकार से और कोई पैसा तो नही कमाया ।
५ आज किसी के सामने मैंने अपनी प्रशसा तो नही की ।
६. आज पराई स्त्री पर मेरी कुदृष्टि तो नही पडी ।
७ आज कितना समय किस-किस कार्य मे व्यर्थ गवाया ।
८ यदि लोग मुझे अच्छा कहते हैं तो मैं अपने आपको वडा तो नही मानने लग गया ।
९ मेरा मन किसी स्वामी की या सद्गुरु की पदवी तो नही लेना चाहता है ।
१० सतत तप-जप जीवन की सफलता की अद्भुत चाबी है ।

सेवा भाव:-

१ सेवा भाव असीम होता है, क्रिया सीमित होती है ।
२ सेवा भावी द्वेष का दमन करता हुआ अपने त्याग पूर्ण व्यवहार से प्रेम का प्रसार करता है ।
३ सेवा भावी अपना नाम और चित्र नही चाहता । वह तो अपनी तुच्छ सेवा से समाज का हित चाहता है ।
४ सेवा भावी का लक्ष्य व्यक्तिगत या दलगत प्रतिष्ठा प्राप्त करने का नही होता । उसे तो सकुचित स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर समाज के उत्थान की लगन बनी रहती है ।

— सुरेश मनसुखलाल मेहता, जयपुर

प्रभु महावीर की महत्ता

☐ डॉ. शोभनाथ पाठक

भगवान महावीर का शुभ आविर्भाव युग के लिये वरदान-स्वरूप सिद्ध हुआ, क्योंकि उस समय हिंसा का बढ़ता हुआ प्रभाव सामाजिक समन्वय के लिए अहितकर हो रहा था। राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला को रात्रि के चौथे प्रहर मे जो शुभ-फलक स्वप्न दिखाई पड़ा उसके मांगलिक महत्ता मे यह श्लोक मननीय है—

माता यस्य प्रभाते करियतिवृषभौ
सिंहपोतं च लक्ष्मी,
मालायुग्मं शशांकं रविझषयुगले
पूर्णकुम्भौ तड़ागं।
पायोधि सिंहपीठं सुरगणनिमृत
व्योमयानं मनोज्ञं,
चन्द्राक्षी नागवासं मणिगणशिखिनी
तं जिनं नौमिभक्तया ॥

अर्थात् हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, दो मालाएँ चन्द्रमा, सूर्य, दो मछलियाँ, जल से भरा सुवर्ण कलश, तालाब, समुद्र, सिंहासन, देवों का विमान, धरणेन्द्र का भवन, रत्नों का ढेर तथा निर्धूम अग्नि स्वप्न मे देखी। रानी की नींद खुल गई। उन्होंने सारा वृत्तान्त राजा सिद्धार्थ को बताया। राजा निमित्त शास्त्र के ज्ञाता थे, अतः वे स्वप्न की महत्ता को समझकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। राजा सिद्धार्थ ने विचार कर रानी से कहा कि तुम्हारे ऐसे तेजस्वी पुत्र को जन्म होगी जो महान् विभूति के रूप में अवतरित हो रहा है।

राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के आह्लाद का ठिकाना न रहा। वे उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे जब ऐसे सुपुत्र से युग मे अनूठा आलोक प्रस्फुटित होगा। अन्ततः

चैत्रसितपक्ष फाल्गुनि शशांक योगेदिते त्रयोदश्याम्।
जज्ञ स्वोच्चस्थपु ग्रहेपु सौम्येपु शुभलग्ने ॥

अर्थात् चैत्र शुक्ला, त्रयोदशी, सोमवार ५९९ ई. पू. अर्यमा योग में रानी त्रिशला ने सर्वगुण सम्पन्न तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। बालक के अवतरित होते ही असीम समृद्धि उमड़ने लगी, अतः बालक का नाम करण वर्द्धमान रखा गया। वर्द्धमान की वरीयता में पूरा राज्य अपार हर्षोल्लास में निहाल हो उठा।

वर्द्धमान द्वितीया के चन्द्रमा के समान अप्रतिम वेग से बढने लगे। अब क्या था, अपने मित्रो के साथ खेल-खेल मे उन्होंने एक मदोन्मत्त हाथी को पछाड़ कर जहाँ सबका मन मोहते हुए, अपने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया, वही भयानक विषधर सर्प को पकड़ कर, दूर फेंक सभी को आश्चर्य में डाल दिया कि एक छोटा सा लड़का ऐसे-ऐसे करतब दिखाकर सबके आकर्षण का केन्द्र बन गये। परिणामतः वीर महावीर सन्मति आदि की महत्ता से मंडित हो युग आलोक के रूप में उभरने लगे।

मानवता के मंगल हेतु अवतरित हुए महावीर के मन में चतुर्गति के प्राणियों के कल्याण की

उत्कट भावना हिलोरें भर रही थीं, अत उनका मन राजसी ठाट-बाट मे न लगा, अपितु त्याग-तपस्या साधना से वे स्वय से निखारते हुए युग उद्धार की ओर उन्मुख हुए। ३० वर्ष की भरी जवानी मे उन्होने दीक्षा लेकर घोषणा की कि

"सव्व मे अकरणिज्ज पाव कम्म"

अर्थात् अब से मेरे लिए सभी पाप कर्म अकरणीय होगे। यही नही वरन् पुन कृत सकल्पित हुए कि

"करेमि सामाइय सव्व सावज्ज जोग पच्चक्खामि"

आज से सम्पूर्ण सावध कर्मों का तीन करण और तीन योग से त्याग करता हूँ। अपनी कचन सी काया को तप की लौ मे तपाते हुए महावीर कठोरतम साधना म निमग्न हो गये। घनघोर वन मे ध्यानस्थ महावीर असीम यातनाएँ सहते हुए, पर्णकुटी तक को त्याग भीषण वर्षा, गर्मी व शीत मे अविचलित हुए विना साधना करते रहे, यही नही वरन् उनका यह सकल्प भी हुआ कि

नाप्रीतिमर्दगृहे वास स्थेय प्रतिमयासह।
न गेहि विनय कार्यो, मान पाणौ च भोजनम् ॥

अर्थात् अप्रीतिकारक स्थानो पर कभी नहीं रहूँगा तथा सदा ध्यानस्थ रहकर मौन रहूँगा। हाथ मे ही भोजन करूँ व गृहस्थो का कभी विनय नही करूँगा। आचाराग के अनुसार उन्होंने कभी भी पर पात्र म भोजन नही किया।

"नो सेवई परवत्थ, परपाए विसेन मु जित्था"

अन्तत १२ वष, ५ महीना, १५ दिन के 'ऋजकूला' नदी के तटपर महावीर को शुक्लध्यान की प्राप्ति हुई। यथा

ऋजकूलायास्तीरे शाल द्रुमसश्रिते शिलापट्टे।
अपराह्णे पष्ठेनास्थि तस्य खलु जम्भिकाग्रामे ॥

महावीर के ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्, जन-जागरण का अभियान शुरू हुआ, जिसमें मानवता के मगल का आह्वान रहा। अब क्या था, महावीर घूम-घूम कर सवको सत्कर्मों का उपदेश देने लगे। सचर-अचर सभी प्रभु महावीर के उपदेशो से इतने प्रभावित हुए कि—

सारगी सिहशाव स्पृशति सुतधि या नन्दिनी व्याघ्रपोत।
मार्जारी हसवाल प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजगम् ॥
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति।
श्रित्वा साम्यकरुढ प्रशमितकलुप योगिन क्षीणमोहम ॥

सारे पशु पक्षी अपने-अपने वैरभाव भुलाकर सिह और गाय एक साथ पानी पीने लगे। भगवान महावीर के सदुपदेशो का चतुर्विध प्राणियो पर ऐसा प्रभाव पडा कि सब अपने-अपने वैरभाव भूल कर महावीर प्रभु के समवशरण मे भी आस्थावान हो गये।

सत्य, अहिसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और ब्रह्मचय की वरीयता का युग को उपदेश देने वाले भगवान महावीर के आदर्श अनुकरणीय हैं। आज की उथल-पुथल, तथा भयानक आणविक विनाश से ससार को बचाने के लिए भगवान महावीर के सिद्धान्तो को विश्व के कोने कोने मे पहुँचाने की आवश्यकता है।

जागृत जीवन चर्या बनाम जैन चर्या

□ विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया, डी. लिट्.
निदेशक : जैन शोध अकादमी, अलीगढ़

कासिमपुर, अलीगढ मे बिजली संस्थान में एक एक्जीक्यूटिव इंजीनियर श्री शर्माजी थे। श्रमी और धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। एक दिन अधिक श्रम से अथवा किसी शारीरिक थकान से गिर गए और कुछ समय के लिए वे अचेत हो गए। लोगो में सनसनी फैल गई और उन्हें तुरन्त चिकित्सक को दिखलाया गया। स्थानीय डॉक्टर ने बोल दिया कि हार्ट अटेक हुआ है, इन्हें पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। प्रारम्भिक उपचार के उपरान्त उन्हे घर पर लाया गया और डॉक्टर के अधीन उनका इलाज होने लगा। एक सप्ताह उन्होने पूर्ण विश्राम किया। घी-दूध सब बंद। शर्माजी बहुत गिर गए और दिनों-दिन गिरावट जारी थी। शुभचिन्तकों ने विचार किया और उन्हे हृदय विशेषज्ञ डॉक्टर महरोत्रा के पास आगरा ले गए। परीक्षण किया गया। दुबारा परीक्षण हुआ। कार्डिओग्राम को बार-बार देखा-परखा गया और अन्त में निर्णय दिया गया कि श्री शर्मा को कभी हार्ट अटेक नहीं हुआ और आगे भी होने की कोई सम्भावना नहीं है। इतना सुनते ही श्री शर्माजी तपाक से उठे और हँसते हुए डॉक्टर से बोले मुझे कासिमपुर के डॉक्टर ने गत सप्ताह मे भूखा मार डाला। अनार और मुसम्मी का जूस पिलाया गया। एक टॉनिक लेकर वे [illegible] भी भर कर खट्टा-मीठा खाया-खिलाया। [illegible] पर [illegible] आश्चर्य का ठिकाना नहीं। सभी को भारी आश्चर्य कि शर्माजी तो बीमार थे पर ये तो जरूरत से ज्यादा स्वस्थ और प्रसन्न है। जब लोगो को सारी बात कह सुनाई तो कुछ तो डॉक्टर को भला-बुरा कहने लगे और कुछ शर्माजी की हालत पर आश्चर्य व्यक्त करने लगे। भला प्राणी कैसा है ?

आज शर्माजी की तरह क्या हजारो व्यक्ति नहीं जी रहे है ? हम जैन धर्म पर विश्वास करने वाले भी डॉक्टरों की निदान-रिपोर्ट पर यकीन नही कर रहे है ? शरीर हम धारण किए हैं और उसकी जानकारी कोई दूसरा रख रहा है। इससे बड़ी परतन्त्रता और क्या होगी ? हमारी नाक, कान, आंख दुःखती है और इलाज उसके अधिकारी डॉक्टर करते हैं। विचार करें इससे बड़ी मखौल और क्या होगी ? जब शरीर पर हमारा अधिकार नही तब आत्मा पर हमारा अधिकार क्या हो सकता है ? इसका कारण क्या है ? इसका कारण है हमारी अज्ञानता। हम अज्ञानी होकर जीवन जी रहे है। पहले हमे हमारा शरीर जानना चाहिए। वह जानकारी लौकिक होगी और बाद मे हमें अपनी आत्मा को जानना और पहिचानना होगा। आत्म-बोध आध्यात्मिक जानकारी कहलाएगी। इतना सब कुछ होना सरल नहीं है। इसके लिए हमें छोटे-छोटे संकल्प धारण कर हमें हमारी जीवन चर्या संयम से सम्पन्न करनी होगी। संयम और तपश्चरण से हम [illegible] है।

कहते हैं एक गृहस्थ के लिए छह 'आवश्यक' होते हैं जिनका परिपालन उसे कठोरता पूर्वक करना चाहिए। कठोरता से तात्पर्य है बिना नागा। कभी कोई भूल चूक नहीं होनी चाहिए। वे छह आवश्यक हैं क्या? देव दर्शन पहला, गुरु वंदना दूसरा, स्वाध्याय तीसरा और चौथा तप तथा पाँचवाँ संयम, छठा है दान।

जैन धर्म में देव की परिकल्पना असाधारण है। सर्वथा भिन्न है उससे जो लोगों में व्याप्त है। सामान्यतः देव वह है जो कुछ देता है। जिसकी कृपा से सब कुछ होता है। अपनी अपनी धारणा लेकर उसके पास जाकर मिन्नत करें तो प्रसन्न होने पर वह प्राप्त हो जाता है आदि मान्यताएँ और धाराएँ व्याप्त हैं। इस सबसे पृथक् एक भिन्न प्रकार की मान्यता है देव की जैनों में। जैन धर्मी देव को निराकार और पूर्णतः वीतरागी मानते हैं। क्रिया उसके बलबूते की नहीं। वह उससे पूर्णतः मुक्त है। हम जो प्राणी हैं वे ही अपने कर्म के कर्ता होते हैं और अपने किए हुए कर्म के फल-भोक्ता भी। देव कभी कुछ बना—बिगाड नहीं सकता। तब फिर उसकी उपयोगिता क्या है? यह एक स्वाभाविक प्रश्न प्रतीत होता है, पर विचार कर देखें तो स्पष्ट होगा कि देव केवल हमारी स्मृति में एक प्रतीक के तौर पर हैं कि हमारी आत्मा जब कर्मों से पूर्णतः विरत हो जाती है तब सिद्धावस्था प्राप्त होती है। सही रूप में यही है वीतरागता। हम भी उन्हें देखकर अपने स्वरूप की अन्तिम और श्रेष्ठ परिणति की कल्पना भर कर सकते हैं। कर्म विरत होने पर हम भी वीतराग बन सकते हैं। हम सब में प्रभु बनने की शक्ति विद्यमान है। उसे हम तप और संयम के द्वारा जगा सकते हैं।

वीतरागवाणी को जिनवाणी कहा गया है। इसकी पूर्णता और विशालता अपूर्व है। जिनवाणी को आगम कहा गया है। आगम का हमें नित्य स्वाध्याय करना चाहिए। छोटे-छोटे संकल्पों को लेकर हम अपनी इन्द्रियों और उनके व्यापारों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। करना ही तप है। इच्छा का सर्वथा निरोध होना ही वस्तुतः तप है। इस सबके लिए प्रारम्भ में हमें अभ्यास करना होगा तप और संयम का। छठा हुआ दान। दान क्या? किसको? ये सभी प्रश्न हैं। जागरूक उत्तर चाहते हैं। जो हमने बाहर का बाहरी प्रयास से संग्रह कर लिया है। आवश्यकता से भी अधिक है उसे सुपात्र को देना दान कहलाता है। दान को चार प्रकार का कहा है जिसमें सभी प्रकार आते हैं। अभय, आहार, औषधि और ज्ञान ये चार प्रकार के कहे गए हैं। कहते हैं इन्हें देने में किसी प्रकार की कीमत नहीं लेना चाहिए।

अब जरा विचार करें कि हमारी चर्या में ये बातें सम्मिलित हैं क्या? जब ये बातें हमारे दैनिक जीवन में कारगर नहीं हैं तब हमारा जीवन कभी जागृत नहीं कहला सकता। अधीन ही अधीन रहना होता है और भली प्रकार से समझ लेना है कि जैन कभी पराधीन नहीं हो सकता। जो पराधीन है वह जैन है नहीं। मिथ्यावादी कभी जैन कैसे हो सकता है? और जो पराधीन है वह कभी सम्यक्दृष्टि हो नहीं सकता। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जैन सदा श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रवान् होता है। चारित्र के अर्थ जो लगाए जा रहे हैं उतना भर है नहीं। चयरिक्त कर चारित्त अर्थात् जो चय, उपचय संचय से सर्वथा रिक्त है खाली है वही चारित्र है। अर्थात् जो नितान्त अपरिग्रही है, असंग है वही चारित्र है। इसमें स्थूल मैथुनी बातें भी हट जाती हैं। सब छूट जाता है। परकीय कुछ भी रहता ही नहीं, तब सम्यक् चारित्र जागृत होता है। अब जरा विचार करें कि जैन जो हम कहलाते हैं वे सचमुच जैन चर्या की ओर उन्मुख हैं भी। होना तो अलग बात है। प्रश्न है क्या उन्मुख भी हैं? यदि नहीं तो नाम के आगे जैन लिखने भर से कोई कभी जैन हो सकता नहीं।

चर्या से जो जाना-पहिचाना जाए वही जैन है। कोठी के आगे नेम प्लेट लगाना सार्थ नहीं सार्थ आपका नाम क्षेत्र में व्याप्त हो जाए तब है। वह होगा चर्या के माध्यम से। जो शरीर से व्यक्ति तक पहुँचता है वह पहुँच क्षणिक है किन्तु शाश्वत पहुँचने के लिए हमें उसके गुणों से व्यक्ति तक पहुँचाना होगा। जैन धर्मी सदा गुणो का उपासक होता है, व्यक्ति का नहीं। अतः हमे अपने गुणों के द्वारा व्यक्ति तक पहुँचना-पहुँचाना होगा।

एक बार मुझे दून एक्सप्रेस में जाना हो रहा था। उसमें एक यात्री और थे। वे सपरिवार थे। रात्रि के आठ बज रहे थे और वे भोजन की योजना बना रहे थे। टिफिन केरियर खोला गया था। उन्होंने शिष्टाचारवश मुझसे आग्रह किया "आप भी मेरे साथ कुछ खा पीलीजिए।" मैंने सावधानी पूर्वक उत्तर दिया "धन्यवाद, मैं रात्रि में खाता पीता नही।" मेरे उत्तर को सुनकर वे पूँछ बैठे "क्या आप जैन है ?" मैंने कहा "जैन कहाँ हूँ जैन तो होने की कोशिश कर रहा हूँ।" यह जानकर आपको भारी आश्चर्य होगा कि वे श्री जी. एल. जैन थे बड़े इंजीनियर। और जब उन्होंने अनेक विधि वार्तालाप किया तो आश्चर्य में पड़ गए। "आप प्रोफेसर भी है और रात्रि में नहीं खाते आश्चर्य है।" "आश्चर्य आपको नहीं मुझे है कि आप जैन है पर आप खाते हैं।" वे इस पर निरुत्तर हो गए। बहुत निकट के हो गए वे और मुरादाबाद आकर वे मुझे ब्रेक जरनी कराकर घर ले गए बड़ा आनन्द रहा। इस घटना से मैं आप तक एक बात पहुँचाना चाहता हूँ कि चारित्र साधना से व्यक्ति का स्वयं परिचय हो जाता है, परिचय कराना नहीं होता। वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि होती है।

महावीर भगवान् ने कहा कि मूर्च्छा सबसे बड़ा परिग्रह है तब हमें प्रमाद से मुक्त होकर जागृत जीवनचर्या में जाना चाहिए। हम जो भी करें वह हमारी जानकारी मे होना चाहिए। कोई चीज उठाएँ जानकर उठाएँ, जानकर रखें, जानकर चलें तात्पर्य जो भी करें प्रमाद में न करें तो हमारी चर्या मे अहिंसा की प्रधानता होगी। यह हमें जैन चर्या के निकट ले जाएगी।

□ □ □

'इच्छा निरोधस्तपः' इच्छाओं का त्याग करना ही वास्तव में 'तप' है। आयम्बिल उपवासादि बाह्यतप करते हुए भी यदि इच्छाएँ बढ़ती जा रही हों एवं दान तथा संतोपवृत्ति जीवन में परिलक्षित न हो तो समझना चाहिए कि 'तपस्या' अभी जीवन से बहुत दूर है।

❁ ❁ ❁ ❁

'स्वाध्याय ही जीवन की कुंजी है।' स्वाध्याय तथा पठन-पाठन के बिना 'सम्यक् ज्ञान' की प्राप्ति दुरूह है। यदि जीवन में ज्ञान विज्ञान की रुचि न हो तो जीवन का स्तर ऊँचा उठाना बहुत कठिन है।

परम-कारुण्यमूर्ति :
पूज्य आचार्य श्री वि. कनक सूरीश्वरजी महाराज

प्रवचन पू आचार्य श्री वि कलापूर्ण सूरिजी
अवतरण 'श्री मुनीन्द्र'
द्वि श्रा व ४, जयपुर

[स्व पू आ श्री वि कनक सूरिजी म की २२वीं स्वर्गवास तिथि (दि ३-८-८५) पर पूज्य श्री का प्रवचन]

महापुण्योदय से आज हमे भगवान श्री महावीर-देव का शासन मिला है। न जाने कई तूफान-झझावत आ गए इस शासन पर। लेकिन फिर भी आज जैन-शासन जयवत है। शासन की इस जाज्वल्यमान मिशाल को अनेक महापुरुषो ने उठाई है और हमारे तक पहुँचाई है। भगवान महावीर से लेकर आज तक के सभी आचार्य भगवन्तो का हमारे ऊपर अनन्य उपकार है। उन आचार्य भगवन्तों मे से आज हमे जिनका गुणानुवाद करना है वे हैं कच्छवागडप्रदेशोद्धारक पूज्यपाद आचाय देव श्रीमद् विजय कनक सूरीश्वरजी महाराज।

प्रश्न होगा कि इनका गुणानुवाद क्यो किया जाय? गौतमस्वामी आदि का क्यो नही? लेकिन समझना होगा कि इनका गुणानुवाद वस्तुत गौतमस्वामी का ही गुणानुवाद है। गुरुतत्त्व से सभी गुरुदेव एक हैं। एक की सेवा सबकी सेवा है और एक की आशातना सबकी आशातना है। खुद भगवान ने भी कहा है—'जो गुरु मन्नइ सो म मन्नइ' जो गुरु को मानता है वह मुझे मानता है।

देव को भी समझाने वाले आखिर कौन है? अगर हम गुरुदेव नहीं मिले होते तो क्या हम देव धर्म को समझ पाते? अन्य लोगों ने भी कहा है—

'गुरु-गोविंद दोना खडे, का को लागू पाय?
बलिहारी गुरुदेव की, गोविंद दियो बताय।'

हमारे आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी भी कहते हैं 'गुरुभक्तिप्रभावेन, तीर्थंकृद्दशन मतम्।' 'गुरु भक्ति के प्रभाव से तीर्थंकर भगवान् के दर्शन होते हैं।

तो आइये, हम पूज्य गुरुदेव के गुणानुवाद द्वारा अपनी जीह्वा और जीवन को पावन करें।

भद्रेश्वर तीर्थ से विभूषित कच्छदेश के वागड-विभाग स्थित पलांसवा गाव की पुण्य धरा पर आज से १०२ वर्ष पहले वि स १९३९ को एक तेजस्वी होनहार बालका जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया कानजी भाई।

उत्तम-कुल मे पैदा होने से बचपन से ही अच्छे सस्कार मिले। सौम्य मुख मुद्रा नम्र व्यक्तित्व और तीक्ष्ण बुद्धि के धारक इस बालक को देखकर वहाँ का ठाकुर अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने कहा।

'इस बालक को मेरे खर्च से इंग्लैण्ड भेज कर बैरिस्टर बनाओ। फिर मैं उसे अपने दरबार में नियुक्त कर लूंगा।' लेकिन जो एक महान् धर्माचार्य होने के लिए इस पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हुए थे वे एक ठाकुर के सेवक कैसे बन सकते? सहज धार्मिक संस्कार वाले इस बालक ने इंग्लैण्ड जाने से साफ इन्कार कर दिया।

एक वक्त निर्मल आचार की धनी महत्तरा साध्वी श्री आनन्दश्रीजी वहाँ आई। इस तेजस्वी बालक को देखकर सोचा : अगर यह बालक शासन को मिल जाय तो कितना अच्छा। उन्होने कानजी भाई को धार्मिक अध्ययन कराया और दीक्षा के लिए प्रेरणा की। पूर्वभव की तो साधना थी ही अतः दीक्षा की बात सुनकर ही कानजी का मान-मयूर नाच उठा। मन ही मन दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। जीवन का ध्येय तय करके तदनुसार आचरण के लिए तैयार हो जाना यह महापुरुषो के जीवन की विशेषता होती है।

निश्चय के अनुसार श्री सिद्धाचल महातीर्थ मे १८ साल की उम्र में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके दृढ़ संकल्प के साथ अपना जीवन मार्ग (संयम) चुन लिया। फिर दीक्षा-गुरु की शोध चलाई। इस वक्त उन्हें शुद्ध चरित्र के स्वामी पूज्य-पाद मुनि श्री जीत विजयजी का समागम मिल गया। उनका निर्मल जीवन देखकर उनके ही चरणो मे दीक्षित होने का निश्चिय कर लिया। वि. सं. १९६२ माग. व. ११ को भीमासर गाँव में बड़े ठाठ से दीक्षा हुई। गुरु वर्य श्री हीर विजयजी (जो उनके संसारी चाचा थे) के शिष्य मुनि श्री कीर्तिविजयजी (बड़ी दीक्षा मे कनक वि.) के रूप में आप विख्यात हुए। फिर तो आपने गुरु सेवा और श्रुत-सेवा मे ही अपना दिल लगा दिया। पहला चातुर्मास भचऊ मे किया। वहाँ पर कर्मग्रन्थ के विद्वान् सुश्रावक श्री अनुपचन्द भाई के पास कर्म-साहित्य का गहरा अध्ययन किया। पू. मेघ वि. म. (बाद में पू. मेघसूरिजी) भी साथ मे थे।

श्रुतभक्ति और देव-गुरु की भक्ति से दिन-दिन आपकी आत्मा उन्नत और निर्मल होने लगी। छोटी उम्र में महान् योग्यता देखकर संघस्थिवर पूज्य आचार्य श्री वि. सिद्धी सूरिश्वरजी म. सा. ने वि. सं. १९७५ में आपको उपन्यास-पद से विभूषित किया। आश्चर्य इस बात का था कि उस वक्त उनके गुरु श्री हीर वि. एवं प्रगुरु श्री जीत वि. विद्यमान थे। स्वयं पंन्यास नहीं होने पर भी प्रशिष्य को पंन्यास बनाने के लिए आग्रह किया। निःस्पृहता और नम्रता की पराकाष्ठा तो तब देखने मिलती है जब पन्यास पद लेकर पू. कनक विजयजी कच्छ-वागड़-पलांसवा में आते है और गुरु-प्रगुरु स्वयं उनका स्वागत करने के लिए नगर से बाहर आते है। उस वक्त पं. श्री कनक विजयजी का सिर शरम से झुक गया, वे बोल उठे : 'अरे गुरुदेव! आप क्यों पधारे?' तब गुरुदेवों ने कहा : 'तेरे सम्मान के लिए हम आये है।' ओह! कितने महान् नम्र गुरुदेव! और कितने विनयी शिष्य!

वि. सं. १९८० में पु. दादा श्री जीत वि. का एवं सं. १९८६ मे गुरु श्री हीर वि. का स्वर्गवास हुआ।

ज्यो-ज्यों पू. आ. श्री सिद्धिसूरिजी आप में योग्यता देखते गये त्यों-त्यों आपको उँचे-उँचे पद से विभूपित करते गए। क्रमशः उपाध्याय बनाकर वि. सं. १९८६ अहमदावाद मे आपको आचार्य पद से समलंकृत किया।

ज्यों-ज्यो फल लगते हैं त्यों-त्यो आम का पेड़ नम्र होकर झुकता है, वैसे आप भी विनयी बनकर अब पू. सिद्धि सूरिजी की आज्ञा को ही सर्वस्व मानने लगे। आपने गुरु के विरह मे उनको गुरु माना और आजीवन उनकी आज्ञा का पालन किया।

प्रसिद्धि मिले या न मिले सम्मान हो या न हो लेकिन संयम का निरतिचार पालन होना चाहिए, गुरु आज्ञा का लोप कभी न होना चाहिए—यह

आपका मुख्य लक्ष्य था। आप मानो या न मानो किन्तु सत्य यह है कि जितना प्रभाव शुद्ध आचार का पडता है, उतना प्रभाव और कोई माध्यम मे नही पड सकता। व्याख्यान से भी ज्यादा प्रभाव आचार का पडता है। मैं भी इनके निर्मल चरित्र से ही आकर्षित हुआ था। सवप्रथम वि स २००६ मे आपके दर्शन हुए और अहमदाबाद मे पू सिद्धि सूरिजी और पूज्य कनक सूरि की निश्रा मे चातुर्मास मे साथ रहने का लाभ मिला। उनकी पूरी दैनंदिनी जागृतिपूर्ण क्रिया देखी और मैं नत-मस्तक हो गया। मेरी दीक्षा के बाद ६ साल तक वे जीवित रहे। यद्यपि मैंने उनके साथ मे चातुर्मास तो ३-४ ही किये लेकिन उस अल्प-समय के सहवास दौरान भी जो मेरे मानस पट मे उनकी निमल छवि अंकित हुई है—वह अमिट है—कभी मिटने वाली नही।

वि स २०१६ का अंतिम चातुर्मास आया। मुझे भी साथ ही चातुर्मास करने की भावना थी। इसलिए ही जामनगर से हम आये थे। लेकिन गाधीधाम वालो के अत्यन्त आग्रह से मुझे गाधीधाम-चातुर्मास के लिए भेजा गया। यह मेरा दुर्भाग्य समझो या सौभाग्य लेकिन उनके साथ अंतिम चातुर्मास न हो पाया। इसे आप दुर्भाग्य भी कह सकते हो और सौभाग्य भी। दुर्भाग्य इसलिए कि गुरु स विरह हुआ और सौभाग्य इसलिए कि गुरु आज्ञा के पालन से उनका हार्दिक आशीर्वाद मिला।

मुनि श्री कलाप्रभ वि और मुनि श्री कल्पतरु वि दो शिष्यो के साथ मे गाधीधाम चातुर्मास के लिए गया। १॥ महीने के बाद श्रा व ४ को ३ बज के ५ मिनिट पर संदेशा आया कि पूज्य गुरुदेव श्री अनन्त की यात्रा की ओर चल पडे हैं। मैं फूट-फूट कर रो पडा और चिल्लाने लगा 'ओ गुरुदेव! आपने मुझे कैसा धोखा दिया? कहा था कि मैं चातुर्मास के बाद तुमसे मिलूँगा और अध्ययन कराऊँगा पर आप तो अकस्मात् ही चल बसे।' जीवन में मैं पहली वक्त ही रोया। माँ-बाप की मृत्यु होने पर भी मुझे रुदन नही आया था। आज भी स्मृति-पट मे उनकी वात्सल्यपूर्ण मुख-मुद्रा प्रशान्त व्यक्तित्व आदि उभर आते हैं और मैं गद्-गद् हो जाता हूँ।

गुरुदेव कितने महान् थे? पू आ श्री वि लब्धि सूरीश्वरजी और पू आ श्री वि नेमी सूरीश्वरजी जैसे दिग्गज आचार्यों ने कहा था—तपागच्छ म सर्वोत्कृष्ट चारित्रमूर्ति कनक सूरीजी हैं। पू प्रेमसूरिजी के शिष्य तपस्वी मुनि श्री कान्ति वि ने कहा था—ये तो कलि-काल के स्थूलभद्र हैं।

आज गुरुदेव पार्थिव देह से यहाँ नही हैं—फिर भी कच्छ वागड के बन्धुओं के हृदय मंदिर मे देव-स्वरूप मे आज भी प्रतिष्ठित हैं। अनन्तश वन्दन उन परम-कारुणिक पूज्य गुरुदेव के चरणो म।

पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ भगवान्

□ लेखक : श्री मनोहरमल लुनावत
जयपुर

संसार के सभी धर्मों मे जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है ऐसा सभी आधुनिक इतिहासकार भी मानते हैं। भारतीय ग्रन्थों मे ऋग्वेद को सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना है। ऋग्वेद के रुद्र सूक्त मे ऋषभदेव भगवान् की स्तुति की गई है जो जैन धर्म के इस अवसर्पणी काल के प्रथम तीर्थंकर हुये है। इसके पश्चात् एक-एक करके तेईस तीर्थंकर और हुये। सोलहवें तीर्थंकर शान्तीनाथ, बाईसवे तीर्थंकर नेमीनाथ, तेईसवे तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर हुये। इन सब तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ भगवान् अधिक चमत्कारी होने के कारण लोगों की आस्था निष्ठा और श्रद्धा उनमे सबसे अधिक रही है। क्योंकि उनके अधिष्ठायक देव धरणेन्द्र व पद्मावती अधिक जागरूक है। रोग, भय, कष्ट, संकट आदि के समय भगवान् पार्श्वनाथ का स्मरण अधिक किया जाता है। मन्त्र, तन्त्र, स्तोत्र और स्तुति जितनी भगवान् पार्श्वनाथ की है उतनी अन्य किसी तीर्थंकर की नहीं है। यही नहीं जितने अधिक प्रसिद्ध मन्दिर पार्श्वनाथ भगवान् के है उतने किसी अन्य तीर्थंकर के नहीं।

पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी नगरी मे महाराज अश्वसेन व महारानी वामादेवी के घर मे पौष वदी १० को हुआ था। इसीलिये आज भी इसी दिन समस्त जैन समाज मे उनका जन्म कल्याणक उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। बचपन से ही पार्श्वकुमार बड़े साहसी और निर्भीक थे। उस युग मे ज्ञान की प्रधानता नही थी बल्कि जड़ क्रियाकाण्ड की प्रधानता थी।

एक समय की बात है कि वाराणसी नगरी में एक कमठ नाम के तापस ने पचाग्नि तप प्रारम्भ किया, जिसे देखने हजारो की सख्या मे लोग आने लगे। यह सुन पार्श्वकुमार भी अपने परिवार सहित उसे देखने गये। पार्श्वकुमार ने अपने ज्ञान से तापस की धूनी के एक काष्ठ मे जलते हुए एक सर्प को देखा और तापस से बोले "दयाहीन तप रूप यह कष्ट व्यर्थ ही क्यों उठा रहे हो? पचेन्द्रिय जीवो को भस्म कर तुम कल्याण चाहते हो?" यह सुन कमठ तापस क्रोधित हुआ और कहने लगा कि राजपुत्र तो हाथी, घोड़े की क्रीड़ा ही जानते हैं परन्तु धर्म को तो हम तापस ही जान सकते हैं। इस पर पार्श्वकुमार का हृदय करुणा और अनुकम्पा से अनुकम्पित हो उठा। उन्होने अग्नि मे से वह लक्कड़ निकलवाकर उसको फड़वाया तो उसमें अग्नि ताप से सतप्त होकर एक सर्प बाहर निकला। पार्श्वकुमार के एक सेवक के मुख से नवकार मन्त्र सुनकर तुरन्त ही मृत्यु पाकर वह सर्प धरणेन्द्र हुआ। इससे कमठ तापस जनता के बीच अपमानित हुआ लेकिन फिर भी वह अपना अज्ञान रूपी तप करता ही रहा और अन्त मे मर कर मेघमाली नामक देव बना।

इस प्रतिभा वाले रूपवान, गुणवान एवं विद्वान पार्श्वकुमार तीस वर्ष तक कुमारावस्था मे रहे

फिर ससार को असार जान आपने तीन सौ व्यक्तियों के साथ चौविहार अट्ठम का तप करके पौष वुदी ११ की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर विचरते हुए एक दिन आप एक तापस के आश्रम मे वट वृक्ष के नीचे रात्रि को ध्यान मे खडे थे। उस समय मेघमाली देव ने पूर्वभव के वैर का बदला लेने हेतु पाश्वनाथ को पानी मे डुबाकर मारने हेतु मूसलाधार वर्षा की। थोडे ही समय मे प्रभु के नाक तक पानी चढ आया। उसी समय धरणेन्द्र का आसन हिलने लगा। और अवधिज्ञान से घटना को समझ वह तुरन्त वहाँ उपस्थित हुआ और इस उपसर्ग की रक्षा की और मेघमाली को धमकाया। अन्त मे मेघमाली ने क्षमा मागी और फिर वहाँ से चला गया। पाश्वनाथ की दृष्टि मे दोनों पर समत्व भाव था। धरणेन्द्र पर राग नही था और मेघमाली पर द्वेष और रोष नही था।

दीक्षा लेने के ८४ दिन पूरे होने पर पार्श्वनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे तीर्थंकर बने क्योंकि घाति कर्मों का क्षय हो चुका था।

राजा अश्वसेन सहित असख्य नर नारियों ने उनकी देशना सुन उनका अनुसरण किया। पार्श्वनाथ प्रभु ने अब सम्पूर्ण भारत मे विहार कर तप, त्याग और आत्म-शुद्धि का उपदेश दिया। भगवान् पाश्वनाथ सौ वर्ष जीवित रहे। अन्त मे अपने निर्वाण को निकट जान वे सम्मेत शिखर पहाड पर चले गये और वहा चौविहार मास क्षमण तप कर श्रावण सुदी अष्टमी को ३३ मुनियो सहित मोक्ष सिधारे। इसीलिये आज की श्रावण सुदी अष्टमी के दिन उनका मोक्ष कल्याण उत्सव बडी धूमधाम मे जैन समाज मे मनाया जाता है।

पाश्वनाथ भगवान् के च्यवन, जन्म, दीक्षा केवलज्ञान और निर्वाण जिन स्थानो पर हुये है उन कल्याणक भूमियो को तीर्थ भूमि माना है और इन क्षेत्रो की यात्रा कर लोग अपना जन्म सफल मानते हैं। आज ऐसा कौन जैन होगा जिसे सम्मेत शिखर की यात्रा करने की भावना न हो जहाँ पार्श्वनाथ भगवान् को निर्वाण प्राप्त हुआ था। लेकिन यह भावना तभी सफल हो सकती है जब हमारा प्रबल पुण्योदय हो।

पाश्वनाथ भगवान् के भारत मे यो तो सैकडो चारो ओर अनेक नामो से प्रसिद्ध मन्दिर हैं लेकिन सखेश्वर पार्श्वनाथ, चिन्तामणि पार्श्वनाथ, गोडी पार्श्वनाथ, जीरावली पार्श्वनाथ, फलौदी पार्श्वनाथ, लोद्रवा पार्श्वनाथ, नाकोडा पार्श्वनाथ, कलिकुण्ड पार्श्वनाथ, नागेश्वर पार्श्वनाथ आदि ऐसे जगत् प्रसिद्ध मन्दिर हैं, जहाँ आज भी हजारो लोग उनकी आराधना एव उपासना कर अपना जन्म सफल मानते हैं।

जैन धर्म के नित्य स्मरण स्तोत्रो में आज भी पाश्वनाथ भगवान् के उवसग्गहर स्तवनम, नमिउण स्तोत्रम्, कल्याण मन्दिर स्तोत्रम्, श्री गौडी पाश्वनाथजिन वृद्ध स्तवनम आदि ऐसे हैं जिनसे भौतिकवाद के इस युग मे मानव सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। पार्श्वनाथ भगवान् के अधिष्टायक देवो मे नागराज धरणेन्द्र, पद्मावती एव पार्श्वयक्ष प्रमुख हैं अत उनकी भी भक्ति कर मानव अपने रोग, भय, कष्ट, सकट आदि का निवारण कर सकता है।

जिस प्रकार मनुष्य मन्त्रो द्वारा देव सान्निध्य प्राप्त कर सकता है उसी प्रकार भक्ति द्वारा परमात्मा जिनेश्वर देव का भी सान्निध्य प्राप्त कर सकता है अर्थात् भक्ति द्वारा परमात्मा जिनेश्वर देव के अचिन्तय प्रभाव से मनुष्य अपनी सब मनोकामनाए पूर्ण कर सकता है।

वर्तमान काल मे श्री शखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा जो असख्य काल प्राचीन है और जिसका अद्भुत, दिव्य एव वर्णनातीत प्रभाव आज के

कलियुग में कल्प वृक्ष के समान है, उनकी आराधना एवं उपासना अट्ठमतप से कर आप अपने जीवन को सफल बना सकते है क्योंकि इनकी अट्ठमतप की आराधना एवं उपासना से अनेको श्रद्धालु आत्माओ के शुभ मनोरथ पूर्ण हुये है। इसी प्रकार ऊपर वर्णित सम्मेत शिखर तीर्थ तथा जगत् प्रसिद्ध पार्श्वनाथ के मन्दिरों मे भी आप पार्श्व प्रभु की उपासना एवं आराधना कर अपनी सही मनोकामनाएं पूर्ण कर सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

• 'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य, दूरादस्पर्शनं वरम्।' अर्थात् कीचड़ में पैर डाल कर फिर उसका प्रक्षालन करने से बेहतर है कि कीचड़ से पैर को दूषित ही न किया जाए। पाप करके उसका प्रायश्चित्त करने की अपेक्षा पाप से बचना ही अच्छा है।

• निर्बल तथा नीच व्यक्ति अपराध करते हैं लेकिन शक्तिमान तथा महान् व्यक्ति उसे सहन करते रहते हैं। क्योंकि शक्ति एवं महानता की प्रतिष्ठा ही सहनशीलता में है।

• प्रभु का स्मरण करने वाला एक दिन प्रभु के समान बन जाता है।

• जीवन में सुख के बाद दुःख तथा दुःख के बाद सुख अवश्य आता है अतः सुख में प्रसन्न नहीं होना चाहिये तथा दुःख में उदास नहीं होना चाहिए।

प्रसिद्ध जैन तीर्थ श्री महावीरजी न्यायिक वाद एवं सही स्थिति

लेखक श्री भगवानदास पल्लीवाल
जयपुर

भारतवर्ष का एक सुप्रसिद्ध तीर्थ श्री महावीर जी दिल्ली-बम्बई रेल मार्ग पर श्री महावीरजी स्टेशन से ४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जयपुर से आगरा मार्ग पर बस मार्ग पर महुआ से ५५ किलो मीटर पर जयपुर से सीधे बस सेवा से जुडा हुआ प्रसिद्ध जैन तीर्थ है।

यह प्रसिद्ध तीर्थ चादनगाँव (नौरगाबाद) तहसील हिंडौन जिला सवाईमाधोपुर (राजस्थान) में स्थित है। श्री भगवान महावीर की महामनोहर मूर्ति एक टीले में स्थित थी। उस टीले पर एक गाय नित्य नियम से वहाँ जाकर खडी हो जाती थी और उसका दूध थनो से अपने आप उस टीले पर निकल जाता था। गाय का मालिक जो एक चमकार था, उसने जब यह चमत्कार देखा तो साहस करके उस टीले को खोदा एव उस टीले मे से यह चमत्कारिक भगवान महावीर की मूर्ति निकली। जिस जगह टीले से मूर्ति निकली थी उसी जगह उक्त मूर्ति को रख कर एक छतरी का निर्माण कराया गया था उस पर भी सवत् १८२६ के लेख लिखे हुए थे जिन्हे अब मिटा दिये गये हैं। वहीं का चढावा आज भी उस खानदान के लोग लेते हैं जिसने कि मूर्ति को टीले से निकाला था।

श्री जोधराज जी पल्लीवाल ग्राम हरसाना रियासत अलवर के मूल निवासी जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल थे।

उनका जन्म कार्तिक सुदी ५ सवत् १७९० तदनुसार १४ नवम्बर सन् १७३३ सोमवार को हुआ था। इनका गोत्र डगिया चौधरी था। भरतपुर राजा ने यहाँ पहुँच कर एव कई युद्धो मे अपनी वीरता का परिचय देने के कारण पाँच हजार घुडसवारो के सेनापति हुए और अपनी कुशाग्र बुद्धि से महाराजा केहरीसिंह (केशरीसिंह) के राज्यकाल मे दीवान जैसी प्रतिष्ठा एव जिम्मेदारी के पद पर आसीन हुए।

प. श्री कैलाशचन्दजी जैन शास्त्री के कथनानुसार जो स्वय एक दिगम्बर जैन थे उन्होंने यह मदिर श्री जोधराज पल्लीवाल दीवान का बनाया हुआ लिखा है जिसे गोरखपुर से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्र कल्याण वर्ष ३९ तीर्थांक सख्या १ ने प्रकाशित किया था।

एक दिन भरतपुर राज्य के दीवान पल्लीवाल जातीय जोधराज जी किसी राजकीय मामले मे पकडे जाकर चादनगाव (श्री महावीरजी) रियासत जयपुर मे होकर गुजरे। उन्होंने चादनगाव मे भूमि से निकली हुई भगवान् महावीर की अत्यन्त प्रभावक व सुदर प्रतिमा के दर्शन कर यह सकल्प किया कि यदि मैं मृत्यु दण्ड से बच गया तो मदिर बनवाकर उक्त प्रतिमा को बडी धूमधाम से प्रतिष्ठित कराऊगा। दीवानजी पर तोप के गोले दागे गये। तीन बार तोप के गोलो के दागने पर भी

जोधराज दीवान का बाल भी बांका नही हुआ। उन्होंने मन मे अपने संकल्प को दोहराया एवं तीन बार तोप के गोलों से बचने के उपलक्ष में तीन शिखर का भव्य जिनालय उक्त स्थान पर भगवान् महावीर स्वामी की मूल प्रतिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रण किया। राजा को जब सब बातो का पता लगा तो उन्होंने दीवानजी को बाइज्जत बरी कर दिया। जोधराजजी दीवान ने अपने सकल्प के अनुसार संवत् १८१७ से श्री महावीर जी का मंदिर बनवाना शुरू किया एवं माघ वदी ७ गुरुवार संवत् १८२६ में उक्त मूर्ति को मन्दिर मे भट्टारक श्री पूज्य श्री महानद सागर सूरी जी ने प्रतिष्ठि करवाई। इन बातो का उल्लेख 'नवीन देहरा पूजन चालीसा और आरती संग्रह दिगम्बर समाज की ओर से प्रकाशित' जिसे विद्या प्रकाशन मन्दिर अलवर ने प्रकाशित किया सन् १९७५ मे, मे भी पृष्ठ संख्या २३ पर स्पष्ट उल्लेख है।

'जैन परम्परानो इतिहास' भाग चौथो जिसे त्रिपुटी महाराज ने लिखा तथा श्री चारित्र स्मारक ग्रंथमाला "जैन धर्मशाला कार्यालय, भावनगर ने प्रकाशित किया है के पृष्ठ संख्या ३९२ पर चादन-गांव महावीर तीर्थ का बहुत ही स्पष्ट उल्लेख है।

जोधराज जी श्वेताम्बर जैन पल्लीवाल थे। श्री महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा के समय ही उन्होने तीन अन्य मूर्तियो की अंजनशिलाका करवाई जिनमे से एक भरतपुर के जैन पल्लीवाल श्वेताम्बर मन्दिर, दूसरी मूर्ति हीग के मन्दिर मे प्रतिष्ठित करवाई जो कालान्तर मे खण्डित होकर मथुरा के अजायब घर मे आज भी विद्यमान है जिस पर निम्न लेख लिखा हुआ है :—

"संवत् १८२६ वर्षे मिती माघ वदी ७ गुरुवासरे हीग नगरे [illegible] (भट्टारके) केसरीसिंह [illegible] विजयराज्ये, भट्टारक श्री पूज्य श्री महानन्द सागर सूरि शिष्य [illegible] पल्लीवाल वंशे डांगिया गोत्रे हरसाणा नगरे वासिना चौधरी जोधराज ने प्रतिष्ठा करापितंप।

तीसरी मूर्ति भी आज भी अन्य स्थान पर स्थित है उस पर भी उक्त सम्पूर्ण लेख लिखा हुआ है।

महावीर स्वामी की मूल प्रतिमा जिसकी प्रतिष्ठा श्री जोधराज जी दीवान श्वेताम्बर पल्ली-वाल ने करवाई थी पर भी संवत् १८२६ के पूरे लेख लिखे हुए थे। मूर्ति के नेत्र ध्यानमग्न खुले हुए है। कंदोरा एव लंगोट के निशान महावीर स्वामी की पद्मासन मूर्ति मे पूर्ण एवं स्पष्ट है।

श्री जोधराज पल्लीवाल श्वेताम्बर जैन थे इसका स्पष्ट प्रमाण दिल्ली जिन ग्रन्थ रत्नावली दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार नया मन्दिर धर्म-पुरा देहली की पुस्तक सूची जो सन् १९८१ मे प्रकाशित हुई है जिसके पृष्ठ संख्या ३७ पर निम्न उल्लेख है।

108 आशारांगष्टिका

लिपि कृत मिश्र आसाराभोग नगर वरीली मध्ये लिखापित श्वेताम्बरानास विजयगहते पल्ली-वाल आमन्ये जैन धर्म प्रतिपालक धर्ममूर्ति सुश्रावक श्री दीवान जोधराज जो तेनेन्द पुस्तक लिखंपित। डंगिहा गोत्रे वासी हरसाना का सुसवासी दीवका।

लिपिकाल माघ सुदी १२, संवत् १८२७

उक्त पुस्तक आज भी हस्तलिखित दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार, नया बाजार धर्मपुरा दिल्ली के भण्डार मे रखी हुई है। यह असांराटीका भी श्री महावीर स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा के सम-कालीन है।

शुरू से महावीर स्वामी का प्रसिद्ध क्षेत्र उसी क्षेत्र के श्वेताम्बर पल्लीवालो के अधिकार मे था सब सेवा-पूजा वही करते थे लेकिन धीरे-धीरे उस क्षेत्र मे रेल्वे की बड़ी लाइन बिछ जाने से जयपुर

से दिगम्बर समाज के लोग उस क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए एव रियासत मे उन लोगो का आपका स्वगवास होने से उस मन्दिर पर अपना अधिकार जमाने लगे ।

पल्लीवाल जैन श्वेताम्बर लोग ही महावीर स्वामी की मूर्ति को रथ मे बैठा कर नदी तक ले जाते थे एव बालो के चवर रथ मे दो व्यक्ति श्वेताम्बर समाज से खडे होकर डुलाते थे । गले मे फूलो की माला पहनाई जाती थी । लेकिन दिगम्बरो ने सन् १९१८ के आसपास गले की फूलो की माला को तोड डाला तभी से श्वेताम्बर एव दिगम्बरो के बीच झगडा चालू हो गया ।

काफी झगडे टटो के बाद श्री नारायणलाल जी पल्लीवाल उस क्षेत्र के एक जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्ति ने श्वेताम्बर समाज के अधिकारो के लिए इस केस मे तन, मन एव धन से अपने आपको समर्पित कर दिया । विगत ४० ५० सालो से उसके लिए जूझ रहे हैं । श्वेताम्बर समाज के मन्दिर पर दिगम्बर समाज द्वारा अनाधिकृत कब्जे को हटाने के लिए उन्होंने अपने जीवन के अमूल्य ४०-५० साल इस केस के लिए अपण कर दिये जो श्वेताम्बर समाज के लिए गौरव की बात है ।

आज यह केस तमाम वर्गों के न्यायालयो मे जाने के बाद श्वेताम्बर समाज की हर जगह जीत होती आ रही है क्योकि केस सच्चाई पर लडा जा रहा है । श्री सागरमल जी साहब मेहता एक माने हुए राजस्थान हाईकोट के एडवोकेट हैं उनका हाईकोट स्तर पर उस केस को सिंगल बैंच, डबल बैंच आदि से पूणरूप से जितवाने मे जो अकथ मेहनत एव लगन मे कार्य किया वे सम्पूण श्वेताम्बर जैन समाज की ओर स बधाई के पात्र हैं ।

सन् १९७७ म श्वेताम्बर समाज की ओर से "श्री जन श्वेताम्बर (मूर्तिपूजक) श्री महावीरजी तीथ रक्षा समिति, जयपुर का गठन होकर रजिस्टर्ड करवाई गई । उक्त कमेटी भी इस केस मे एक पार्टी बनी एव अब दोनो केस श्रीनारायणलाल पल्लीवाल एव उक्त श्वेताम्बर समिति एक सयुक्त रूप से कोट के आदेश से एक हो गये हैं तथा अब यह केस गवाहो के बयानो की स्टेज पर चल रहा है ।

दिगम्बर समाज ने हाईकोट, सुप्रीमकोट आदि मे अनावश्यक रूप से लेजाकर केस को काफी लम्बा खेंचा है । लेकिन शासनदेव, आचार्य भगवतो के आशीर्वाद से हर जगह श्वेताम्बर समाज की विजय होती आ रही है ।

आचार्य भगवत श्री विजयभानुसूरीश्वरजी महाराज, एव बम्बई के श्री कुमारपाल भाई तथा नटवरलाल भाई के द्वारा इस केस मे विशेष रुचि ली जा रही है सो सम्पूर्ण श्वेताम्बर समाज की ओर स वदनीय है एव बधाई के पात्र हैं ।

दिगम्बर समाज द्वारा लगोट आदि के चिह्न को घिसने की काफी कोशिश की है । जिसके लिए अपनी ओर से मूर्ति का निरीक्षण कोट के आदेश से हो चुका है जिसकी रिपोर्ट भी श्वेताम्बर आम्नाय के हक मे है ।

मन्दिर जी के मुख्य प्रवेश द्वार पर गणेशजी की मूर्ति विराजमान है । जो सिर्फ श्वेताम्बर समाज के मन्दिरो मे ही होती है । इसको भी कइ बार दिगम्बर समाज ने वहा से हटाने की कोशिश की थी लेकिन वहा के स्थानीय लोगो के उग्र विरोध एव असतोष के कारण ही अभी तक नही हटा सके हैं ।

अभी तक इस केस मे श्वेताम्बर समाज की ओर से काफी व्यक्तियो के बयान कोर्ट मे रिकाड हो चुके हैं । तथा यह केस आज एडीशनल डिस्ट्रिक्ट जज सख्या २ जयपुर की अदालत मे विचाराधीन हैं, समाज की ओर से वहा श्री वीरेन्द्रकुमार जी अग्रवाल एव श्री गुमानमलजी लूणीया केस की बागडोर को सभाले हुए हैं ।

चूंकि उक्त चमत्कारपूर्ण प्रतिमाजी श्वेताम्बर हैं एवं भव्य मन्दिर की स्थापना श्वेताम्बर मान्यता वालों द्वारा की गई थी और सारे रिकार्डों के अनुसार भी उक्त मन्दिर श्वेताम्बर समाज का ही था लेकिन दिगम्बर समाज द्वारा उस पर अनधिकृत कब्जा किया हुआ है। न्यायालय में दावा विचाराधीन है। पूर्णरूपेण पलड़ा श्वेताम्बर समाज का भारी है तो भी न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा।

समस्त जैन श्वेताम्बर समाज का नैतिकदायित्व है कि इस केस में अपना तन, मन एवं धन से पूर्ण रूपेण योगदान करें। अपने अधिकारों के लिए सजग एवं जागृत होवें।

धर्म की प्रभावना का इससे सुन्दर मौका और नहीं मिलने वाला विशेपकर श्वेताम्बर समाज के नवयुवक वर्ग को भी इस ओर सहयोग चाहिए।

कुछ अर्सों से दिगम्बर वन्धु अन्य श्वेताम्वर मन्दिरों पर भी काविज होने की ओर अग्रसर हो रहे हैं सो यह एक गम्भीर मामला है। जिसके लिए भी सम्पूर्ण जैन श्वेताम्बर समाज को जागरूक होने की परम आवश्यकता है।

एक ही पेड़ की दो शाखायें भगवान महावीर के दोनों ही अनुयायी, जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त 'जीओ और जीने दो' के नारों के उद्घोषक सत्य अहिंसा में पूर्ण आस्था रखने वाले, दोनों आम्नायों दिगम्बर एवं श्वेताम्वर बन्धु आज आपस में ही किस विषम कगार पर खड़े हैं, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। समाज का जो पैसा समाज की भलाई के कार्यों में खर्च होना चाहिए वह आपसी अदालती मामलों में, मन्दिरों के अनाधिकृत कब्जों को करने मे, कथनी एवं करनी के भेद को कायम रखने मे खर्च हो रहा है। दोनों ही समाज के आगेवान व्यक्तियों, साधु मुनिराजों को इस ओर विशेपकर समाज के कर्णधारों को आज की पीढ़ी के नवयुवको की इस ओर एक चेतना जागृत करनी होगी।

- औषधि, आहारादि द्वारा जो व्यक्ति मुनिराजों की भक्ति सेवा करते हैं, उन्हें भी अनुमोदना के द्वारा चारित्र की आराधना का फल अवश्य मिलता है।

- जीवन निर्माण का प्रथम सोपान (सीढ़ी) है—सप्त व्यसन का त्याग। सप्तव्यसन ये हैं—शराब, मांस, जूआ, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन।

"एक जैन-कला-रत्न की विदेश यात्रा"

लेखक—शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी
स नि पुरातत्त्व राज्य सग्रहालय, लखनऊ

धर्म को सुबोध बनाने का माध्यम कला है। कला धर्म को स्थायित्व भी प्रदान करती है। राज्य सग्रहालय, लखनऊ म जैन धर्म से सम्बद्ध कला का भरपूर सग्रह है। जैन धम के अन्तर्गत अर्घ्यगपट्ट या आयाग पट्ट अर्थात् पूजा के प्रतीक चौकोर प्रस्तर खण्ड होते थे। इन पर अष्ट प्रतिहार, मागलिक चिह्न, कही-कही तीर्थङ्कर का लघु अकन आदि पाते हैं। इन पट्टो को कमल एव अगूर की बेलो से सजाया जाता था।

यू तो मथुरा से आयाग पट्ट मिलते हैं। अपवाद स्वरूप एक आयाग पट्ट अहिच्छत्रा—बरेली से भी है। वैसे यह भी ज्ञात है कि कौशाम्बी की खुदाई म भी ये मिले थे। लखनऊ सग्रहालय मे मथुरा के ककाली टीले से प्राप्त आयाग पट्ट ही विशेष महत्त्व के हैं। इनमे एक तो राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली मे शोभा रहा है।

आयाग पट्टो पर लेख भी उत्कीर्ण हैं कुछ बिना लेख के भी हैं। इन पर उत्कीर्ण लिपि के आधार पर या आयाग पट्ट पर बने पशु-पक्षियो, आकृतियो आदि की शैली के आधार पर इन्हें पुराविदो ने ई पू द्वितीय शती से लेकर प्रथम द्वितीय शती ईस्वी तक के मध्य रखा है।

इन्ही आयाग पट्टो के साथ का ही प्रस्तुत कला रत्न भी है।[1] यह लाल चित्तीदार बलुए पत्थर का ५६×५३ से मी का है। इसके चारो कोनो में प्रत्येक मे एक सी आकृति बीच वाले चक्र दोनो हाथो से पकडे हैं। इन स्त्रियो के निचले भाग बेल के रूप मे दानों ओर घूमे हुए हैं।-यह ईहामृग विधि कहलाती है। मूलचक्र का बाडर कल्पलता तथा उसके मध्य मे व्यन्तर देवो से सुशोभित है। किन्तु चारो दिशाओं के मध्य म नीचे से मुनि, बोधिवृक्ष, स्तूप तथा अस्पष्ट वस्तु बनायी गई है। मध्यभाग मे वतुलाकार स्वस्तिक है जिसे कमल पुष्पो से अलकृत किया गया है। स्वस्तिक के घुमाव मे पुन मत्स्ययुग्म, श्रीवत्स, स्वस्तिक एव भद्रासन का विलेखन है। इसके बाद चार नन्दीपाद चिह्नो का अकन है तदुपरान्त मध्य मे ध्यानस्थ तीर्थङ्कर के अकन से इस पट्ट को समलकृत किया गया है। मूल प्रतिमा के पीछे पद्म पखडियो की सजावट है। ऊपर दोनों ओर प्रलम्ब माला झूल रही है। कभी इस आयाग पट्ट पर लेख लिखा, कि‍न्तु आज कुछ अक्षरो का होना ही प्रतीत होता है। लेख चू कि पढा नहीं जा सकता इस कारण यह आयाग पट्ट किसने बनवाया आदि के बारे मे मौन ही रहना पडेगा। हाँ, तीर्थङ्कर-तिपायी, सिहासनादि न बैठाकर कमल पत्रों पर बैठे हैं। इनके सिर के दोनो ओर लटकन वाली प्रलम्बमाला की बनावट आदि शैली के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लगभग प्रथम शती ईसा पूर्व के आस-पास गढा गया होगा।

सवप्रथम यह कला-कृति सन् १९८०-८१ म लदन महोत्सव म विदेश गई, वहाँ से दिल्ली आयी और वहीं से जापान प्रदशनी मे भेजी गई। अधुना, अमेरिका मे आयोजित प्रदशनी मे भारतीय कला एव जैन दशन की यशगाथा को अपने दर्शकों को समझा रही है। अस्तु, मात्र राज्य सग्रहालय, लखनऊ का यही आयाग पट्ट है जो इतने लम्बे समय तक विदेश मे रहा हो।

१–जे २५० रा स ल।

भगवान् महावीर और वर्तमान जीवन

□ लेखक : प्रोफेसर श्री संजीव प्रचंडिया 'सोमेन्द्र'

मैं मानता हूँ कि आज आम आदमी दुःखी व दारुण है। उसके पास बहुत कुछ होते हुए भी कुछ नही है—ऐसा वह मान बैठा है। पदार्थों मे आसक्त हो गया है वह। आकर्षण दुःख को निमन्त्रण देता है। मेरे पास कार है, बंगला है, टी. वी. है, फ्रिज है आदि-आदि। किन्तु यदि मेरे पड़ोसी पर ऐसा कुछ नही है तो यह सब उसके लिए दुःख का संयोजन कर देगा। मान लें यदि वह दुःखी नही भी होता है तो मैं, जिसके पास सब कुछ है, इस उधेड़-बुन मे खो जाएगा कि मेरा पड़ोसी दुःखी क्यो नही हुआ अर्थात् बेचैनी मुझमे समा जाएगी।

साधनों का अभाव दुःख का स्रोत नही है। साधनों का विकास भी दुःख का स्रोत नही माना जा सकता। यह सब तो निर्जीव वस्तुएँ है। ये जैसी है वैसी ही प्रत्येक दशा मे रहेगी। यदि सुख-दुःख का गणितीय हिसाब देखना है तो वह सब है हमारे मन की इष्ट-अनिष्ट विकल्प परिस्थितियो मे। हम जैसा वस्तु मे देखने लगते हैं, हमे वस्तु वैसी ही दीखने लगती है। तो यह देखने की सूक्ष्म या स्थूल दृष्टि मुझमें है अर्थात् यह वृत्ति नितांत वैयक्तिक वादी वृत्ति है। इसीलिए भगवान् महावीर रूढि से हटकर धर्म की बात कहते थे, जो शाश्वत है। वे सुख-दुःख के झमेले से दूर, भीतर की यर्थात् और शाश्वत सुख शांति की ओर उन्मुख थे।

आज जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह की घटनाएँ जगह-जगह पर दिखायी दे रही हैं उसका मूल कारण है पर पदार्थों में आसक्ति। बाह्य सुख संग्रह की वृत्ति में सना हुआ यह मूढ़ प्राणी, जीवन के असार पहलू को भूल जाता है। जो प्रकृत-जन्य सत्य है उसे वह अपने से ओझल क्यो करता है ? इस ऐसी परिस्थिति मे भगवान् महावीर ने पंच महाव्रत का उद्घोष किया था। इन सभी पंच व्रतों की उस काल में जितनी आवश्यकता थी उससे कहीं कम आज नही। आज आवश्यकता है भगवान् महावीर के 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त की। तभी सुख और शांति की परिकल्पना की जा सकती है।

□ □ □

माघ काव्य-दीपिकाकार ललितकीर्त्ति का समय

☐ महोपाध्याय विनयसागर

जिन प्रतिभा कार्यालय, ८०६ चौपासनी रोड, जोधपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'जिन प्रतिमा' वर्ष १, अक १, जून १६८४ मे डॉ द बा क्षीर सागर का "माघ काव्य दुलभ टीका परिचय" शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख मे विद्वान् लेखक ने माघ काव्य पर प्राप्त १५ टीका–टीकाकारो का नामोल्लेख करते हुए, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के सग्रह मे प्राप्त दिनकर मिश्र, सरस्वती तीर्थ, विष्णुदासात्मज और ललितकीर्त्ति की टीका प्रतियो का परिचय दिया है। प्रतिष्ठान की अधिग्रहण सख्या ४०३०६ पत्र १४१ [वस्तुत १४१वा पत्र भिन्न टीका का पृथक् पत्र है] की प्रति का परिचय देते हुए लिखा है —

"टीकाकार ललित कीर्त्ति गणि लब्धिकल्लोल गणि के शिष्य तथा कीर्त्ति रत्न सूरि के प्रशिष्य हैं। टीका का नाम 'ललित माघ दीपिका' अथवा 'सन्देहान्धकार ध्वस दीपिका' दिया गया है। यथा पुष्पिका —

इति श्री खरतरगच्छे करेण्याचार्य श्री कीर्त्ति-रत्न सूरि सन्तानीय वाचनाचार्य लब्धि कल्लोल गणि क्रमाम्भोज भृङ्गायमान शिष्य वाचना-चार्य–ललित कीर्त्ति गणि विरचितायां ललित माघ दीपिकाया विंशतिम सर्ग सम्पूर्ण।"

खरतरगच्छ की शाखा-प्रशाखाओ के इतिहास का ज्ञान न होने के कारण लेखक ने 'कीर्त्ति रत्न सूरि सन्तानीय' का अर्थ कीर्त्ति रत्न सूरि के प्रशिष्य कर दिया है। यहाँ 'सन्तानीय' शब्द 'शिष्य परम्परा मे' का वाचक है।

टीकाकार ललित कीर्त्ति का समय निर्धारण करने के लिये लेखक ने ऊहापोह करते हुए लिखा है —

"पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी ने खरतरगच्छ गुर्वावलि-प्रबन्ध मे १३८१ वि मे चतुर्विंशति जिनालय स्थापना के क्षुल्लक पट्टक मे ललितकीर्त्ति का उल्लेख किया है। अत ललितकीर्त्ति यदि ये ही वे हैं, तो १४वी शती के पूर्वार्द्ध मे होने चाहिए, जबकि नाथूराम प्रेमी ने जैन साहित्य और इतिहास ललितकीर्त्ति का यश कीर्ति के गुरु के रूप मे उल्लेख किया है। हरिश्चन्द्र कायस्थ कृत धर्मशर्माभ्युदय की एक सामान्य टीका की रचना यशकीर्ति ने की थी। इस टीका की एक पाण्डुलिपि सरस्वती भण्डार, बम्बई मे उपलब्ध है तथा इसका लिपि समय १६५२ वि है। इनके अतिरिक्त ललितकीर्ति के विषय मे अन्य प्रमाण दृष्टिगत नही हुआ है।"

खरतरगच्छ गुर्वावलि प्रबन्ध मे कीर्तिरत्नसूरि एव लब्धिकल्लोल का उल्लेख न होने से ललित

कीर्ति का समय १४वीं शती स्थापित नहीं किया जा सकता। और, पुष्पिका मे 'खरतरगच्छे' उल्लेख होने से उन्हें दिगम्बर भी नही माना जा सकता। अस्तु।

× × ×

वस्तुतः इस ललित माघ दीपिका की अभी तक तीन प्रतियां ही उपलब्ध हुई हैं—१. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, परिग्रहणांक ४०३०६; २. लालभाई दलपतभाई भारतीय सम्कृति विद्या मन्दिर, अहमदावाद, मुनि पुण्य विजयजी संग्रह, क्रमांक ४८३४, परिग्रहनांक २६३३, पत्र ६२, लेखनकाल १७५०, दस सर्गान्त, और ३, मेरे निजी संग्रह में। मेरे संग्रह की प्रति खण्डित एवं अपूर्ण है, और लिपिकाल १८वी शती है। जोधपुर और मेरे संग्रह की प्रतियों में टीकाकार की रचना प्रशस्ति प्राप्त नही है, जिससे कि रचना-सम्वत् का निर्धारण किया जा सके। उक्त तीनो प्रतियो में सर्गान्त पुष्पिका मात्र प्राप्त है। सर्गान्त पुष्पिकाओ मे कई स्थलों पर 'वाचनाचार्य ललित कीर्ति' के स्थान पर 'भरोपाध्याय ललित कीर्ति' का प्रयोग भी प्राप्त होता है।

पुष्पिका मे श्री खरतरगच्छे व रेण्याचार्य श्री कीर्ति रत्न सूरि का स्पष्टतः उल्लेख है। कीर्ति रत्न सूरि का समय १४४६ से १५२५ तक का है। इनका जन्म १४४६ में हुआ था। ये संखवालेचा गोत्रीय सा. देएमल्ल के पुत्र थे। इन्होंने १४६३ आषाढ़ वदि ११ खरतरगच्छाचार्य श्री जिनराज सूरि [प्रथम] के पट्टधर जिनवर्धन सूरि के पास दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा नाम कीर्तिराज था। जिनवर्धन सूरि ने ही इन्हे १४७० मे वाचक पद और श्री जिनभद्र सूरि ने १४८० वैशाख शुक्ला १० महेवा मे उपाध्याय पद तथा १४८७ माघ शुक्ला १० को जैसलमेर में आचार्य पद प्रदान किया था। आचार्य पद के समय इनका नाम कीर्तिरत्नसूरि रखा गया। इन्होंने १४६५ में नेमिनाथ महाकाव्य की रचना की, जो डॉ. सत्यव्रत अनूदित और सम्पादित होकर बीकानेर से प्रकाशित हो चुका है। १५१२ मे राजस्थान में सर्वाधिक प्रसिद्ध तीर्थ नाकोड़ा पार्श्वनाथ प्रतिमा पुनर्स्थापना कर प्रतिष्ठापित की। १५२५ वैशाख वुदि ५ को वीरमपुर (वर्तमान मेवानगर नाकोड़ा) में इनका स्वर्गवास हुआ। वही इनका स्तूप बनवाया गया, जो आज भी नाकोड़ा में टेकरी पर विद्यमान है। १५२५ में प्रतिष्ठित इनकी मूर्ति भी नाकोड़ा पार्श्वनाथ मन्दिर के मूल गर्भगृह के बाहर विराजमान है। इन्ही के नाम से खरतरगच्छ की परम्परा मे कीर्तिरत्नसूरि के नाम से उपाध्याय पद धारियों की एक प्रशाखा चली। इस परम्परा में श्री जिनकृपा चन्द्रसूरिजी (स्वर्गवास वि.सं १९९२) जैसे प्रसिद्ध आचार्य हुए है।

इन्हीं कीर्ति रत्न सूरि की परम्परा में ललित कीर्ति हुए है। इनके सम्बन्ध में भी अन्तः साक्ष्य प्राप्त है। इस माघकाव्य टीका के अतिरिक्त अन्य दो कृतियाँ और प्राप्त है :—

१. शीलोपदेशमाला–दीपिका : र. सं. १६७८ लाट द्रुह

२. अगड़दत्त रास : १६७९ भुजनगर

शीलोपदेश माला दीपिका में ललितकीर्ति ने १७ पद्यों में रचना-प्रशस्ति प्रदान की है। पद्यांक १ से १० में खरतरगच्छ के आचार्यों की परम्परा दी है और प्रशस्ति पद्य ११ से १७ में स्वगुरु परम्परा और रचनाकाल स्थान का उल्लेख किया है। पूर्ण प्रशस्ति इस प्रकार है :—

"प्रचुर चतुर चञ्चवचातुरी नीर पूर्णः,
सकल समय पारम्पर्य रत्नादि युक्तः।
निरवधि गुण सञ्च स्फूर्ज दूर्मिप्रवाहः,
खरतरगण वार्दिवृंदिनां यातु नित्यम् ॥१॥

तत्राऽभूत् कलिकाल गौतम निभ सूरीश्वरोद्योतन-
स्तत्पट्टे सकलेन्दु निमल गुण श्री वर्द्धमानो पुन ।
येन प्राप्यण हिल्लपतनपुरे श्री दुर्लभ स्याग्रत ,
प्रोधत्कीर्तिभरा वृहत्खरतरेत्याख्या क्षितौ
विश्रुता ॥२॥

योऽस्तु [१ स्व] स्तिकूले सता ततमति जैनेश्वरो
गच्छराट्,
सद्गच्छार्णव नीरवधनविधौ चन्द्रोपम स्तत्प दे ।
श्री मच्छ्री जिनचन्द्र सुगुरुर्जात प्रभूतक्षन ,
श्री भव्याम्वुज बोधपुष्करमणि ख्यात क्षितौ
कीर्तिभि ॥३॥

जीवा जीव विचार चारि मघरंवृ त्तिनवा-
ड्ग्यायर्क-
चक्रे स्तम्भन के पुन प्रकटित पाश्वश्च यै
स्थापित ।
येभ्य प्राप्य गुणालय खरतरोगच्छ प्रतिष्ठा भुवि,
श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते स्यु सता शमदा ॥४॥

तत्पहोदय शैलवासरमणि सविग्न चूडामणि ,
श्रीमान् श्रीजिनवल्लभोऽभवदल स्वीयैगु णैवल्लभ ।
तत्पहेऽद्भुत कीर्त्तिमण्डलधर श्री जैनदत्ताभिध ,
सूरिर्येन जिता सुपर्वनिकरा सोऽस्तु श्रिये
श्रीगुरु ॥५॥

चन्द्रश्चन्द्रुसम स्वगच्छकुमुदे सूरीन्द्र चूडामणि,
श्रीयुक्तो जिनपत्ति सूरिरभव ज्जैनेश्वरस्तत्पदे ।
जातस्तत्त्वमति प्रवोधगुरुराट् चन्द्रस्तदीये पदे,
नाम्नात्कल्पतरु जनेषु कुशल सत्पद्म-लब्धिर्जिनात्
॥६॥

चन्द्रभ्रस्यश जिनोदयगुरु श्री जैनराज प्रभु-
स्तत्पहृ जिनभद्रसूरिरभवच्चन्द्रश्रिया वारिमा ।
नानो चाऽय समुद्र-हस सुगुरु माणिक्यसूरिस्तत ,
श्रीमच्छ्रीजिनचन्द्रराट युगवरख्यात क्षितौ
स्वैर्गुणै ॥७॥

सिंह सर्वपरीपहद्विपगणे शौर्येण सिंहोपम ,
श्रीमान् श्री जिनसिंह सूरिगण भृतत्पट्टभूपामणि ।
दक्ष श्री जिनराज सूरिगणराट् सौभाग्यभाग्यालय-
श्चञ्चच्चन्द्रमरीचि मण्डल य शाध्वस्तात्तरारिव्रज
॥८॥

प्राग्वाटान्वय कल्प पादप सम श्री रूपजी का रित-
श्री शत्रुञ्जय मण्डपाष्टम महोद्धार प्रतिष्ठा कृता ।
येन स्मेरवलक्षपद्म यशसा बोहित्यवशायमा,
सोऽय श्री जिनराज सूरिगणराट् जीयात् सहस्र
समा ॥९॥

स्फूर्जत्तर्क वितर्क गर्वितमनो वादीन्द्रपञ्चानन ,
प्रौढाष्टा पद सन्निभो विजयते चिन्तामणिर्देहिनाम् ।
सोऽय श्री जिनराज सूरिगण भृद्भूतानि ददातदर-
स्तद्राज्ये विहिता हिताय भविना सद्दीपिकेय
मया ॥१०॥

अथ स्वगुरु प्रशस्ति

शिष्य श्री जिनराज सूरिसुगुरो सच्छीलीलीलास्पद
सद्बुद्धिजिनवर्द्धनो गणधर स्तच्छिष्य मुख्याग्रणी ।
कोशश्चारुधिया प्रधानमुकुट श्री शङ्खवालान्वये,
वय्यावय्य पदावदातविदित श्री कीर्तिरत्नाह्वय
॥११॥

शिष्यो हर्ष विशाल वाचकमणि स्तत्पाद से वापरो
हर्षाद्धर्मगणिश्च वाचकवरस्तद्भक्ति लब्धोदय
प्रोद्यच्छ्रीधर साधु मन्दिर गुरुस्तद्वाचकोऽभूत्पुन ,
शिष्याऽभूद् विमलादिरङ्ग गणिराट् भक्त
स्वकीयेगुरौ ॥१२॥

तस्य शिष्यौ भुवि ख्यातौ गुरुभक्तिपरायणौ ।
ख्याता कुशलकल्लोल-लब्धिकल्लोलनामको ॥१३॥

तन्मध्ये च समग्रवाचकवर श्री लब्धिकल्लोलक-
शिक्षा भृल्ललितादिकीर्त्तिगणिना शीलोपदेशसुज ।
द्राक् चक्रे विवृति सुबोधसुगमा लाटद्रहे सद्रहे
८ ७ ६ १
वस्वम्भोधि रसामृतद्युति मिते [१६७८] वर्षे
प्रदीपोत्सवे ॥१४॥

यावज्जैनमतं धरासुविदितं यावद्‌गिरं स्वर्गिणां,
यावच्चन्द्ररवी सुरेन्द्रपदवीं यावत्पतिः पाथसामू ।
रम्यं शास्त्रमिदं सदा सुखकरं श्रोतुश्च कर्त्तुः भृश,
तावन्नन्दतु भूतले विरचितं श्री वीर
सान्निध्यतः ।।१५।।

ग्रन्थमानं स्फुटं पञ्च सहस्रं ग्रथितं मया ।
प्राज्ञैस्तथापि चिन्त्यं हि सार्द्धद्वय
शताधिकम् ।।१६।।

यदि युक्त म युक्तं वा प्रोक्तमत्र प्रमादतः ।
कृपा कृत्वा मयि प्राज्ञैः पठनीयं विशोध्य च ।।१७।।
इति श्री शीलोपदेश माला दीपिका ।
कृता च स्वपरोपकृतये ।
[मेरे संग्रह की प्रति से]

प्रशस्ति के अनुसार ललितकीर्त्ति की गुरु-परम्परा इस प्रकार है :—

श्री कीर्त्तिरत्नसूरि
|
वाचक हर्षविशाल गणि
|
वाचक हर्षधर्म गणि
|
वाचक साधुमन्दिर गणि
|
वाचक विमलरंग गणि
|
वा० कुशलकल्लोल — वाचक लब्धिकल्लोल
|
वाचनाचार्य ललितकीर्त्ति गणि

अर्थात् ललितकीर्त्ति, कीर्त्तिरत्नसूरि की परम्परा में उनके पश्चात् छठवें पट्ट पर हुए। यही गुरु-परम्परा ललितकीर्त्ति ने अगड़दत्त रास की रचना-प्रशस्ति में दी है। देखें, जैन गुर्जर कविओ प्रथम भाग, पृष्ठ ५०९-१० ।

इस अन्तःसाक्ष्य प्रमाण के आधार पर स्पष्टतः सिद्ध है कि महोपाध्याय/वाचनाचार्य ललितकीर्त्ति का समय विक्रमीय १७वीं शती का उत्तरार्द्ध है और प्रशस्ति पद्य ८-९-१० के अनुसार तत्कालीन खरतरगणनायक श्री जिनराजसूरि [द्वितीय] जिनका जन्म स० १६४७, दीक्षा सं० १६५७, आचार्य पद सं० १६७४ और स्वर्गवास सं० १७०० है—के विजय राज्य मे विचरण करते थे ।

अतः लेखक डॉ० क्षीरसागर द्वारा समय के सम्बन्ध में चर्चित ऊहापोह स्वतः ही निरस्त हो जाता है ।

× × ×

जोधपुर प्रतिष्ठान संग्रह की उक्त प्रति ललित-माघ दीपिका से सम्बन्धित १४० पत्रात्मक ही है । उक्त प्रति का १४१वा पत्र ललितमाघ दीपिका का न होकर, प० दोदराज प्रणीत माघ काव्य-टीका की रचना प्रशस्ति का है। न जाने किस प्रकार, किसी की अनभिज्ञता एव असावधानी के कारण यह अन्तिम पत्र नाम साम्यता के कारण इस प्रति के साथ संलग्न हो गया ? इस पत्र से यह तो निश्चित है कि दोदराज रचित टीका की प्रति के १४१ पत्र थे । प्रस्तुत लेख के लेखक भी इस पत्र को उक्त प्रति से भिन्न मानते हुए लिखते है :—

> "परन्तु, यह अन्तिम पत्र कागज की दृष्टि से नवीन प्रतीत होता है तथा इसका आकार भी भिन्न है। पुनश्च १४० पत्रों में उपयुक्त [१ प्रयुक्त] पंच पाठ शैली का निर्वाह इस पत्र पर नही किया गया है तथा हस्तलेख की असमानता भी दृष्टिगोचर है ।"

उक्त १४१वे पत्र पर जो प्रशस्ति दी गई है, वह निम्नांकित है :—

चन्द्रबाणाश्वसोमेन [१७५१] युक्ते सम्वत्सरे वरे ।
चेत्रार्जुनीय पक्षस्य द्वादश्यां शुक्रवारके ।।१।।

परोपकार सतत विभर्त्ति, यत्मङ्गते बुद्धिरियर्ति पारम् ।
तमन्वह लोकवर प्रवन्दे, सज्ज्ञानमूर्त्ति जगदादिकीर्त्तिम् ॥२॥

अन्त शत्रु समूहो या हत क्षान्त्यादिना शुभ ।
जगत्कीर्त्तिगु र्गीयाद् येनाऽस्मो लोकपूजित ॥३॥

मायीर्मश्रिव [?] देव सन्तुष्टो भव सवदा ।
उद्धारयसि लोकास्त्व ससाराम्भोनिधौ यत ॥४॥

माघ सम्पूर्णता नीतो दोदराजेन निश्चितम् ।
भट्टारक शिरोरत्न-जगत्कीर्त्ति निदेशत ॥५॥

लक्ष्मीदासेन येनाय दोदराज सुपादित ।
पण्डितेन प्रसिद्धा सा प्रतिष्ठाकारि सिद्धि दा ॥६॥

अनादिन व वास्पुञ्ज यत्कृता ज्ञानसम्पदा ।
सन्तत गोवितरिष्ट [?] निमली कृत जन्मना ॥७॥

दोदराजेन टीकेय लिखिता बुद्धिहेतवे ।
वाचकस्य सदा भूयान् मङ्गल बुद्धिदायका ॥८॥

कम्बुलक्ष्म्या जगत्पूज्य सात्विकाना शिरोमणि ।
नेमिनाथ जिन पायान् मोहमल्ल विमदक ॥९॥

इसके अनुसार वि० स० १७५१ चैत्र शुक्ला १२ शुक्रवार के दिन भट्टारक जगत्कीर्त्ति के निर्देशानुसार पण्डित दोदराज ने माघ काव्य की टीका लिखी । दोदराज का विद्यागुरु लक्ष्मीदास था, जो पण्डित रूप मे प्रसिद्ध था और जिसने सिद्धिदात्री प्रतिष्ठा करवाई थी ।

प्रशस्ति पद्याक ५ 'माघ सम्पूर्णता नीतो दोदराजेन' तथा पद्याक ७ 'दोदराजेन टीकेम लिखिता बुद्धिहेतवे' से सदेहास्पद स्थिति भी निर्मित होती है कि दोदराज प्रतिलिपि कर्ता हो । किन्तु, मेरे अभिमतानुसार तो 'सम्पूर्णता नीतो' 'टीकेय लिखिता' तथा दो बार स्वय के नाम-प्रयोग से निश्चित है कि दोदराज ने माघ काव्य पर स्वतन्त्र टीका का निर्माण किया था ।

प्रशस्ति पद्यो से दोदराज कवित्व शक्ति मे प्रौढ विद्वान् हो, ऐसा प्रतीत नही होता है ।

वी० पी० जोहराकेर की पुस्तक 'भट्टारक सम्प्रदाय' के अनुसार भट्टारक जगत्कीर्त्ति दिगम्बर परम्परा मे दिल्ली जयपुर शाखा मे हुए हैं । इन जगत्कीर्त्ति का भट्टारक काल १७३३ से १७७० रहा है । × × × इनके समय से सागावत शहर [शायद सागानेर] मे पडित लक्ष्मीदास हुए—का उल्लेख भी इस पुस्तक मे है । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि दोदराज सागानेर या इसके आस पास अर्थात् वतमान, जयपुर प्रदेश का ही निवासी हो ।

माघ काव्य पर श्वेताम्बर जैन विद्वानो/मुनियो द्वारा रचित अनेक टीकायें प्राप्त हैं, किन्तु दिगम्बर जैन विद्वान् द्वारा निर्मित का तो यह उल्लेख मात्र ही प्राप्त है । खेद है कि इस प्रशस्ति पत्र के अतिरिक्त इस टीका की पूर्ण या खण्डित प्रति अभी तक जैन भण्डारो मे प्राप्त नही हुई है ।

भट्टारक जगत्कीर्त्ति प्रसिद्ध भट्टारक एव विद्वान् थे । इनका जयपुर और अजमेर प्रदेश पर अधिक वचस्व रहा है । अत सभव है, इन क्षेत्रो के ज्ञान भण्डारो/मन्दिरो मे ही कहीं इसकी पूर्ण प्रति प्राप्त हो । जैन-विद्वानो का कतव्य है कि इस एक मात्र टीका को प्राप्त करने के लिये शोध अवश्य करें ।

वास्तव मे डॉ० डी० वी० क्षीरसागर साधुवाद के पात्र हैं कि जिन्होने लेख लिखकर इस नव्य टीका की ओर इगित किया है ।

□ ● □

प्रवचन–पीयूष

प्रवचनकार : यू. मा. श्री वि. कलापूर्ण सूरिजी
अवतरणकार : राजमल सिंघी

अनन्त उपकारी अनंत गुणों के सागर, अपूर्व दया के भंडार, तीर्थंकर भगवान जीव मात्र के कल्याण के लिए मोक्ष का मार्ग अपने धर्म-उपदेश के माध्यम से बताते है—संसार सागर से पार उतरने का साधन बताते है। वो चाहते है कि संसार रूपी जेल में कोई जीव न रहे और नर्क की यातनाएँ किसी को सहनी न पड़ें। भगवान धर्म-देशना देकर तीर्थ की स्थापना करते है—धर्म का मर्म बताते है। अनादि काल से जिन धर्म अपना कार्य कर रहा है। गणधरों ने उनके उपदेशों को उनसे ग्रहण किया एवम् कालान्तर मे आचार्यो ने उसे लिपिबद्ध किया जो हमारे आगमो मे उपलब्ध हैं। इन आगमो द्वारा हमको भगवान के उपदेश-वचनो की प्राप्ति होती है। आचार्य, उपाध्याय, मुनि जो धर्म उपदेश देते है, वह धर्म जिनेश्वर द्वारा बताया हुआ धर्म ही है। वे तो मात्र भगवान की वाणी को अपने तक पहुँचाते हैं और धर्म-कार्य करने की प्रेरणा देते हैं।

जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिए जहाज की आवश्यकता होती है उसी प्रकार संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। तीर्थंकर भगवान द्वारा दिए गए उपदेशों के अनुसार यदि हम अपना जीवन व्यवहार करें तो हमको धर्म की प्राप्ति हो सकती है। मनुष्य को जो शारीरिक शक्ति, बुद्धि और वाणी मिली है उसके द्वारा वह भगवान के उपदेशों को अपने मन मे उतार सकता है और आचरण में ला सकता है। हमको निर्मल बुद्धि तत्त्व विचार के लिए मिली है, न कि दुनियादारी के विचारो के लिए, शारीरिक शक्ति धार्मिक कार्य, तप और संयम के लिए मिली है, न कि हिंसादि पाप कार्य या सांसारिक झगड़ों मे पड़ने के लिए। हमको वाणी प्रिय वचन बोलने एवम् भगवान के गुणगान के लिए मिली है, न कि किसी को कुवचन कहने के लिए अथवा किसी से लड़ाई झगड़ा करने के लिए। धन और सम्पत्ति परमार्थ के कार्य मे लगाने के लिए मिली है, न कि केवल मौज शौक की पूर्ति के लिए। यह जीवन, जीव-मात्र के कल्याण के लिए है। धर्म का स्वभाव ही मंगलमय है। धर्म का शुभ फल मिले बिना नहीं रह सकता। धर्म के प्रभाव से ही सुख और शान्ति मिल सकती है।

इन्द्र से भी अथवा देवों से भी मनुष्य के भाग्य बड़े हैं क्योंकि मनुष्य जन्म से ही मोक्ष की साधना हो सकती है, धर्म कार्य हो सकते है, देवों द्वारा नहीं। देवता भी मनुष्य जन्म पाने के लिए लालायित होते है। जिस मनुष्य का मन धर्म मे लगता है उसको इन्द्र भी नमस्कार करते है। हमको मनुष्य जन्म मिला, धर्मिष्ठ पवित्र माता-पिता मिले, कुलीन परिवार मिला, पूर्ण धन और स्वजन मिले, शरीर और साधन मिले, और हमको

उच्च जैन-धर्म मिला—फिर भी यदि हम जिनेश्वर की आज्ञा का अनुसरण कर, मोक्ष-मार्ग पर चलकर, मोक्ष प्राप्ति का साधन नही जुटा सके तो फिर यह जन्म किस काम का ? अनन्त जन्मों और भव भ्रमण के पश्चात् हमको जो मनुष्य जन्म मिला है, उसका हमको पूर्ण लाभ उठाकर धर्म कार्य में लग जाना चाहिए। धर्म कार्य करते समय कई संकट और बाधाएँ आएँगी, किन्तु उनसे हमको विचलित नही होना है, न हमको धर्म यह सोचकर करना है कि यदि हम धर्म करेंगे, तो लोग हमको अच्छा कहेंगे, अथवा हमारा मान बढेगा। धर्म तो आत्म कल्याण के लिए है न कि अपना स्वयं का प्रचार करने के लिए। मृत्यु के बाद आपके साथ आपका धन या कुटुम्ब नहीं चलेगा—चलेगा केवल धर्म या अधर्म। यदि धर्म किया तो क्रमश मोक्ष की प्राप्ति होगी, और अधर्म किया तो नर्क मिलेगा। एक भव की कमाई आपके साथ तब तक चलेगी जब तक आपको मोक्ष न मिल जाय। धर्म के कारण ही जीव को सुख मिलता है वरना जीव को तो दुःख ही दुःख है। धर्म ही जीवन और प्राण है। धर्म आत्मा का भोजन है, और जिनवाणी पानी है। धर्म की हमको भूख और प्यास लगनी चाहिए और इसको जल्दी से जल्दी स्वीकार करना चाहिए।

हमको भगवान के बताए गए उपदेशों को आचरण मे लाना है। भगवान ने हमारे आचरण के लिए दान, शील, तप और भाव बताए। भाव की मुख्यता बताई। धर्म को अपने मे लाने के लिए, भगवान के बताए हुए तत्त्वो पर विचार करना होगा। तत्त्वज्ञान हमको बताता है कि हम कौन हैं, ससार क्या है, हमारा असली स्वरूप क्या है, जीव, चेतन, आत्मा क्या है। मुख्य तत्त्व जीव है। अन्य सभी तत्त्व जीव के पीछे हैं। तत्त्वज्ञान बताता है कि हम ससार मे क्यो हैं, मोक्ष मे क्यो नही। यह सब कर्म का ही प्रभाव है। जीव और कर्म साथ जुड़े हुए हैं धर्म का मर्म समझने के लिए तत्त्वज्ञान आवश्यक है। धर्म को सुनकर जीवन में उतारना है, आचरण मे लाना है। बुद्धि को तत्त्व-विचार मे लगाना है।

सभी भव्य जीव मोक्ष जाना चाहते हैं, किन्तु मोक्ष जाने की तैयारी के बिना हम मोक्ष कैसे जा सकते हैं ? यदि बबई जाना हो तो हमको बबई का टिकट लेना ही पडेगा और बबई जाने वाली रेलगाड़ी अथवा हवाईजहाज मे बैठना ही पडेगा।

जहाँ धर्म का निवास होता है, वहाँ दुःख का नाश होता है। भगवान की शरण मे रहने से आनन्द की प्राप्ति होती है। सामायिक, प्रतिक्रमण, तप, जप, पूजा, आराधना का समय आनन्द से बीतता है। धर्म साधन मे लगे रहने से सुख की प्राप्ति होती है। हमको प्राणो से भी अधिक धर्म को मानना चाहिए—मनुष्य जन्म पाकर शुभ-कर्म मे लग जाना चाहिए। हमको धर्म केवल अच्छा ही नही लगना चाहिए, किन्तु हमको धर्म करना अच्छा लगना चाहिए। जिनेश्वर द्वारा बताया गया धर्म ही सत्य धर्म है। धर्म की साधना करना, मिट्टी मे से सोना निकालना जैसा है। हम धर्म के प्रभाव से ही अच्छा जीवन जी रहे हैं, वरना जीवन मे मृत्यु के कई अवसर आते हैं।

मानव जन्म मे हम धन कमाने, बगले बनाने, कुटुम्ब की वृद्धि और पालनपोषण करने, मौज करने के लिए नहीं आए हैं। शरीर का पोषण कितना ही किया जाय, यह कायम रहने वाला नहीं है। आत्मा को शरीर से क्या लेना-देना। भगवान कहते हैं, धर्म भावना रखो, और धर्म क्रिया करो—अवश्य मोक्ष मिलेगा। धर्म के बिना जीवन मे भी शाति मिल ही नही सकती। क्रोध, मान, माया, लोभ को मन, वचन और कर्म से दूर करने से ही धर्म मिल सकेगा। ममता और कषाय अधर्म हैं, समता हमारा स्वभाव है। ममता

विभाव है। धर्म हमारे स्वभाव और परिणामों को बदल देता है। धर्म को अपने से दूर करने से, सुख के स्थान पर दुःख आ बैठता है। जहां धर्म है वहां सुख है, और जहां अधर्म है वहां दुःख है। हमको ऐसा धर्म करना है जिससे हमारी सद्गति हो जाय।

यदि आप किसी समय धर्म न कर सको, तो धर्म करने वालों की अनुमोदना (प्रशंसा) तो अवश्य करो। अनुमोदना से आपमे धर्म आयगा और आप सोचेंगे कि मैं भी धर्म करूँ। अनुमोदना भी धर्म है, किन्तु इसका अर्थ यह न समझ लेना कि अनुमोदना ही धर्म है, अनुमोदना ही काफी है। अनुमोदना तो धर्म की पहली सीढी है। आगे की सीढ़ियों पर चढ़ने, अर्थात् धर्म को आचरण मे लाने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी। हमारे धर्म आचरण को देखकर, हमारे कुटुम्बी, हमारे पड़ौसी, हमसे सम्पर्क में आने वाले, और हमारा धर्म कार्य देखने वाले, धर्म की ओर बढ़ेंगे और धर्म का आचरण करेंगे।

धर्म श्रवण :

धर्मोपदेश श्रवण, श्रद्धा और विश्वास रखकर सुनना चाहिए ताकि उसका प्रभाव स्थाई रूप से हो। श्रोता तीन प्रकार के होते हैं—(१) कमल पर पड़ी पानी की बूंद जैसे, जिस पर बूंद पड़ी ही रहेगी, (२) तवे पर पड़ी हुई पानी की बूंद की तरह, जो जलकर समाप्त हो जावेगी, (३) सीप मे पड़ी हुई पानी की बूंद के समान, जो मोती बन जावगी। अच्छे श्रोता तीसरे प्रकार के होते हैं, जो सुनकर धर्म को आचरण मे लाते हैं और अपना भव सुधारने में लग जाते हैं।

अनादि काल से धर्म हमको बुला रहा है। इसको हमें रोकना है। हम ऐसी निद्रा में सो रहे हैं कि हम पर उपदेशों का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता। हम चैतन्य हैं, और हमारे में अपूर्व शक्ति है, फिर भी हम जड़ की तरह व्यवहार कर रहे है। हमको धर्म श्रवण कर उस पर विचार करना चाहिए, उसके अनुसार आचरण करना चाहिए। धर्म को जीवन में लाने के लिए धर्म सुनना ही पड़ेगा। धर्म की प्राप्ति श्रद्धा रखने से ही होती हैं। धर्म देशना भी धर्म जिज्ञासु के लिए ही उपयोगी होगी। धर्म पिपासु को दिया गया उपदेश सफल होता है क्योकि वह उसको ग्रहण करता है। धर्म जानने की तीव्र इच्छा से ही धर्म सीखा जा सकता है। धर्म की बात सुनकर जीवन में उतारें, उसका ही धर्म सुनना सार्थक होगा। व्याख्यान में कथाओं का समावेश इसलिए किया जाता है कि, कथा में उपलब्ध उदाहरणों से, धर्म के सिद्धान्त भली प्रकार समझ में आ जाते हैं। जन्म, जरा, मरण से बचने के लिए वैराग्य की कथाएँ सुननी चाहिए। हर बात को धार्मिक दृष्टि से सोचना व करना चाहिए।

धर्म श्रवण कर दूसरों को सुनाना चाहिए क्योंकि सुनाने से धर्म ग्रहण होता है। धर्म श्रवण करते समय लिख सको तो लिखना भी चाहिए ताकि घर जाकर धर्म का सार लिखकर आप दूसरो के लिए उपयोगी साहित्य की रचना कर सकते हैं, और आप स्वयं भी उसको बार-बार पढ़कर, मनन कर, उसके अनुसार आचरण कर सकते हैं। धर्म केवल मात्र एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देने के लिए नहीं है।

धर्म श्रवण के बाद यही भावना होनी चाहिए कि मुझे कब संयम मिले। भगवान हमको धर्म का वास्तविक रूप समझाते हैं। जिस समय हम गुरु से भगवान का बताया हुआ उपदेश सुनें, उस समय हमको ऐसा लगना चाहिए कि हम साक्षात् भगवान को सुन रहे हैं। हमारे जीवन में धर्म आने से हमारा दिव्य स्वरूप बन जायगा — अलौकिक पदार्थ का दर्शन होगा, दूर तक देख सकेंगे और सारा विनाश रूप समझ सकेंगे।

श्रावक वही है जिसमे 'श्रा' हो, अर्थात् सम्यक्-
ान हो—देव, गुरु, धम मे श्रद्धा हो, जिसमे 'व'
, विवेक हो, अर्थात् सम्यक् ज्ञान हो, जिसमे 'क'
। अर्थात् सम्यक् चारित्र (क्रिया) हो—तप सयम
।, नियमो का पालन करता हो, सामायिक प्रति-
ऋमण करता हो।

रत्नत्रय और नवकार मत्र

तीर्थंकर परमात्मा ने हमको धम की प्राप्ति के लिए तीन रत्न दिए है जो रत्न त्रय कहलाए जाते हैं। वे रत्न हैं—(१) सम्यक् ज्ञान, (२) सम्यक् दर्शन, (३) सम्यक् चारित्र। "सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष माग" इस सूत्र मे जैन धम का सार है। पच परमेष्ठियो का स्मरण है। हमारे जीवन मे इन तीनो रत्नो की प्राप्ति हो जाय तो हमारा जीवन सफल हो जाय। दशन, ज्ञान और चारित्र का सबध नवकार मत्र के साथ किस प्रकार है, यह सोचिए। "मार्ग" शब्द से अरिहत परमात्मा का स्मरण होता है क्योकि वे मोक्ष का माग बताते हैं—"अरिहत" नवकार मत्र का पहला पद है—सर्वप्रथम उनको नमस्कार किया गया है—नमो अरिहताण। "मोक्ष" शब्द से सिद्ध का स्मरण होता है क्योकि वे मोक्ष मे विराजमान हैं—अत द्वितीय पद मे सिद्ध को नमस्कार किया गया है—नमो सिद्धाण। "चारित्र" शब्द आचाय का सूचक है क्योंकि वे शुद्ध चारित्र का पालन करते हैं—नवकार मत्र के तीसरे पद मे आचार्यो को नमस्कार किया गया है—नमो आयरियाण। "ज्ञान" शब्द उपाध्याय का बोध कराता है क्योकि उपाध्याय, ज्ञान का पठन और पाठन कराते हैं—नवकार के चौथे पद मे उपाध्यायो को नमस्कार किया गया है—नमो उवज्झायाण। "दशन" साधु का गुण है क्योकि उनमे सम्यक् दशन है, अर्थात् सुदेव, सुगुरु, सुधम पर पूण श्रद्धा है—नवकार मत्र के पाँचवें पद म सभी साधुओ को नमस्कार किया गया है—नमो लोए सव्व साहूण।

इस प्रकार इस छोटे मे पद मे पूरे नवकार मत्र का समावेश है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दशन और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का माग है। सम्यक् (सही) ज्ञान जिन आगमो, शास्त्रो और गुरुओ से प्राप्त होता है, सम्यक् दर्शन, सुदेव, सुगुरु और सुधम पर श्रद्धा करने से प्राप्त होता है और सम्यक् चारित्र प्राप्त किए हुए ज्ञान के अनुसार आचरण करने को कहते हैं।

नवकार मत्र के प्रथम दो पद "अरिहत" और "सिद्ध" हैं। ये देव तत्त्व हैं और बाद के तीन पद गुरु तत्त्व हैं। मनुष्य को प्रतिपल नवकार-मत्र का स्मरण करना चाहिए—उठते-बैठते, चलते फिरते, हर समय उसी का ध्यान करना चाहिए। अरिहत और सिद्ध को हृदय मे विराजमान करना चाहिए। उनकी मूर्ति भगवान का साकार रूप है। मूर्ति की पूजा और नवकार स्मरण से भगवान का बोध होता है उनके स्वरूप का ज्ञान होता है। अरिहत ही हमारे भगवान हैं जिन्होने राग द्वेष को जीता है। अरिहत परमात्मा मे सभी उत्तम आत्माओ का समावेश है। अरिहत ही धर्म का उपदेश देते हैं। धम का उत्पत्ति स्थान ही अरिहत हैं, आज भी महाविदेह क्षेत्र मे २० अरिहत हैं। अनादि काल से अनन्त अरिहत हो चुके हैं। महावीर स्वामी तो इस काल के अतिम तीर्थंकर हैं। अरि-हत तीर्थ की स्थापना कर तीर्थंकर बनते हैं। अरिहत ही सिद्ध बनते हैं और मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। सिद्ध निरजन निराकार हैं। अरिहत और सिद्ध के प्रति अपूर्व भक्ति उत्पन्न कराने वाले आचार्य हैं। आचार्यो मे परोपकार की भावना होती है। वे तीर्थंकर भगवान के बताए धर्म को प्रचार करते हैं और धम करने की प्रेरणा देते हैं कि मनुष्य को अपने छोटे से जीवन मे क्या-क्या करना चाहिए ताकि मोक्ष की प्राप्ति हो जाय।

नवकार मत्र म इन पाच परमेष्ठियो को

नमस्कार किया गया है "नमो" शब्द में शरणागतता है, नम्रता का भाव है। नवकार मंत्र की आराधना से, पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करने से सभी पापों का नाश होता है और सभी मंगलों की प्राप्ति होती है।

आत्मा और मोक्ष :

आत्म स्वभाव में स्थिरता ही मोक्ष है। हम आत्मा हैं, शरीर नहीं। शरीर तो परिवर्तनशील है, आत्मा ही स्थाई है। आत्मा मे श्रद्धा होनी चाहिए। सच्चा सुख आत्मा के सुख मे है, शरीर के सुख मे नही। मिथ्याज्ञान को छोड़ने से ही भव-भ्रमण छूट सकेगा। तीर्थंकर भगवान द्वारा बताया गया मार्ग ही मोक्ष का सर्वोत्तम मार्ग है। यह मार्ग सम्यक् ज्ञान, दर्शन चारित्र हैं। इस मार्ग को पाने और शास्त्रों के अनुसार आचरण करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। हमारा असली घर मोक्ष है। संसार तो सराय मात्र है जहाँ आना जाना होता रहता है, किंतु मोक्ष में जाने के बाद वापिस आना नही होता। मोक्ष मे पहुँचाने वाले सच्चे साथी भगवान ही हैं। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की आराधना से ही हमको मोक्ष मिल सकेगा। बुरे कर्मो से तो हमको नर्क ही मिलेगा। अज्ञानी जीवन को विषय और भोग सताते हैं। वह उसी में फँसा रहता है। जब तक विषय मे फँसे रहेंगे और संसार छोड़ नहीं सकेंगे, तब तक मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकेंगे। धर्म साधना से इस बार मोक्ष नही मिलेगा, तो अगली बार मिलेगा, किन्तु मिलेगा अवश्य। मनुष्य जन्म पाकर महाविदेह क्षेत्र मे जा सकते है, और वहाँ मे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। सांसारिक सुख तो क्षणिक है। अक्षय सुख तो मोक्ष में ही है, जहाँ जाने के बाद जन्म मरण की व्याधि समाप्त हो जाती है।

□ □ □

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल के प्रगति के चरण

□ महामत्री अशोक शाह

श्री आ जै सेवक मण्डल तपागच्छ सघ का एक युवक सगठन है जो समाज के धार्मिक एव सामाजिक कार्यों मे हमेशा अग्रणी रहा है ।

गतवर्ष अगस्त माह मे मण्डल की कार्यकारिणी के द्वि-वार्षिक चुनाव पूव अध्यक्ष श्री सुरेश मेहता की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुए । निम्न सदस्य निर्विरोध निवाचित घोषित हुए —

श्री शीतल शाह अध्यक्ष, श्री घनपत छजलानी उपाध्यक्ष, श्री अशोक शाह (जन) महामत्री, श्री आनन्दराज मेहता कोषाध्यक्ष श्री सुनील सचेती सास्कृतिक मत्री, श्री राजेश नाहटा शिक्षा मत्री, श्री शान्ति लोढा सूचना एव प्रसारण मत्री एव श्री ललित दूगड सगठन मत्री ।

कायकारिणी सदस्य श्री शान्ती सिंघी, श्री लक्ष्मण मारू, श्री चिमन भाई एव श्री सुरेश मेहता चुने गए ।

वर्ष भर मे विभिन्न सस्थाओ मे आयोजित कायक्रमो म मण्डल के सदस्यो ने सक्रिय भाग लेकर सुन्दर व्यवस्था की । सामूहिक स्नात्र पूजा वाद्य यन्त्रो सहित पढाने का कायक्रम गत वर्षों की भाति सुचारु रूप से चला ।

गत वर्षों की तरह ही इस वर्ष भी मण्डल की ओर से भगवान् महावीर के जन्म वाचन दिवस पर सक्रिय कायकर्ता श्री नरेन्द्र कोचर, श्री शरद चौरडिया, श्री प्रितेश शाह एव श्री मोहित साड के साथ ही मण्डल की ओर से जयपुर जैन समाज की प्रमुख समाज सेविका श्रीमती मन्जुला बहन शाह का भी बहुमान किया एव साथ ही महिला उद्योग केन्द्र की ओर से मण्डल के ३ सदस्यो का बहुमान श्री भवरलालजी मूथा के कर-कमलो द्वारा किया गया ।

गत कुछ वर्षों से मण्डल द्वारा निघन छात्र-छात्राओ को पास पुस्तकें नि शुल्क वितरण करने का काय बराबर चल रहा है । साथ ही जिन छात्र-छात्राओ की फीस उनके परिवार वाले देने मे असमथ हैं उनकी फीस की व्यवस्था मण्डल द्वारा की जाती है । मण्डल की ओर से एक विशाल निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, निबन्ध का विषय "जैन धम के पांच महाव्रतो का पालन कर राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है ।'

इस प्रतियोगिता मे करीब ७५ प्रविष्टियां प्राप्त हुई जिसमे जैन-अजैन सभी तरह के व्यक्ति शामिल हुए । निम्न प्रतियोगियो को पुरस्कार प्रदान किये गये ।

१.	श्री अजय छजलानी	प्रथम
२.	श्रीमती रवि सिंघवी	द्वितीय
३.	कुमारी रेहाना परवीन	तृतीय

सांत्वना पुरस्कार मण्डल सदस्यों द्वारा प्राप्त किये गए। समारोह पूज्य मुनिराज श्री जयरत्न विजयजी मा० साहब की सान्निध्यता मे सम्पन्न हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री आर. सी. शाह एवं मुख्य अतिथि संघ के अध्यक्ष श्री हीरा भाई चौधरी रहे।

निबन्धों की जांच हेतु श्री मोतीलालजी भडकतिया, श्री सौभाग्यमलजी .श्रीश्रीमाल, श्री जांवतराजजी राठोड एवं श्री विमल कोचर ने अपना अमूल्य समय देकर बारीकी से जांच की उसके लिए मण्डल परिवार सभी का बहुत-बहुत आभारी है।

तत्पश्चात् मण्डल परिवार द्वारा निर्णय लिया गया कि मालव देव की पंच तीर्थ यात्रा की जावे जिसमे एक मिनी बस दिनांक ३-१०-८४ को सायंकाल ६॥ बजे पूज्य मुनिराज श्री नयरत्न विजय म० सा० से आशीर्वाद प्राप्त कर तीर्थ यात्रा हेतु प्रस्थान किया। यह यात्रा नागेश्वर, आलोट, मक्षीपार्श्वनाथ, उज्जैन, हसामपुरा, रतलाम, विजयनगर, किशनगढ़ मदनगंज, दांतरी होते हुए दिनांक ७-१०-८४ को रात्रि ६ बजे सकुशल यात्रा सम्पन्न कर जयपुर पहुंचे।

यात्रा प्रवास मे सभी यात्रियों द्वारा सेवा पूजा एवं सामूहिक स्नात्र पूजा, देव दर्शन, गुरु वंदन आदि का पूर्ण लाभ लिया गया। मण्डल ने जयपुर से प्रकाशित श्री जैन श्वे० डायरेक्टरी के निर्माण मे पूर्ण सहयोग दिया। मालपुरा प्रतिष्ठा समारोह के अवसर पर मण्डल द्वारा पूर्ण सहयोग किया गया।

मण्डल की गतिविधियाँ सुन्दर ढंग से चल रही है इसके लिए मण्डल श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ के पूर्व अध्यक्ष श्रीमान् हीराचन्दजी चौधरी एवं पूर्व संघमंत्री श्री मोतीलालजी भडकतिया का धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकता जिनकी प्रेरणा एव सहयोग से मण्डल प्रगति कर सका है। मण्डल परिवार को आप सभी बड़े बुजुर्गो का मार्ग-दर्शन बराबर मिलता रहेगा।

साथ ही मैं आशा करता हूं की श्री संघ के वर्तमान अध्यक्ष एवं संघमंत्री का पूर्ण सहयोग सदैव की भांति मिलता रहेगा।

इसी आशा के साथ !
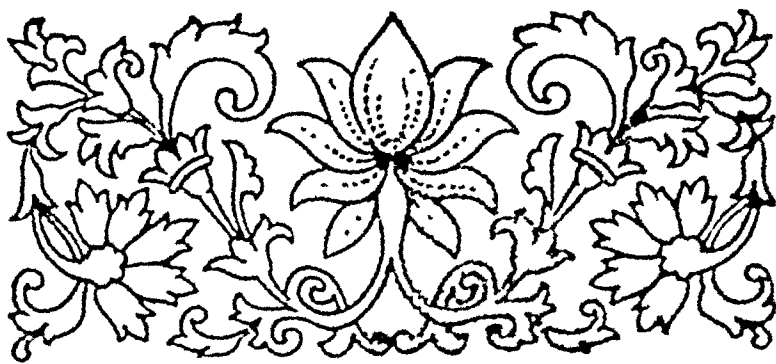
श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर
वार्षिक विवरण १९८४-८५
महासमिति द्वारा अनुमोदित

प्रस्तुतकर्ता श्री नरेन्द्रकुमार लुनावत
सघ मन्त्री

अध्यात्मयोगी परम आदरणीय पूज्य आचार्य श्रीमद् विजयकलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब, मुनिमण्डल, साध्वीजी महाराज साहब तथा उपस्थित साधर्मी भाइयो एव बहिनो !

शासन नायक अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के जन्म वाचना के इस शुभ अवसर पर श्री जैन श्वे तपागच्छ सघ का वार्षिक कार्य विवरण तथा आय व्यय विवरण सन् १९८४ ८५ सघ की महासमिति की ओर से प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

विगत चातुर्मास

जैसा कि आपको विदित है कि गत वर्ष परम पूज्य मुनिराज नयरत्न विजयजी महाराज साहब तथा जयरत्नविजयजी महाराज साहब ठाणा २ का चातुर्मास था। आपकी पावन निश्रा मे पर्युषण पर्व बडे हर्ष एव उल्लासपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुये। मणिभद्र का २६वा पुष्प महाराज साहब को समर्पित किया गया। बडे उत्साह तथा उमग के साथ जन्म वाचना के दिन १४ सपनो की बोलिया भी हजारो मण मे बोली गई। पर्युषण पर्व के बाद अनेको तपस्याओ के निमित्त अठाई महोत्सव का आयोजन हुआ तथा उसके बाद आसोज की ओलीजी की आराधना सानन्द सम्पन्न हुई तथा इसके उपलक्ष मे नवान्हिका महोत्सव का सफल आयोजन भी हुआ। दोनो महोत्सवो में ही सघ के अगेवान श्रावको ने अपनी ओर से पूजा कराकर प्रभु भक्ति का अपूर्व आनन्द लिया। इसके पश्चात् दोनो मुनिराजो ने भैरून्दा के लिये जयपुर से विहार किया और उस समय आपको भाव भीनी विदाई दी गई। आपके चातुर्मास काल मे जयपुर सघ की ओर से भेरून्दा मन्दिर जीर्णोद्धार एव मल्हारगढ मे उपाश्रय निर्माण हेतु काफी अच्छा आर्थिक योगदान दिया गया।

नई महासमिति का निर्वाचन

पूर्व महासमिति का ३ वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने पर नये सदस्यो के निर्वाचन हेतु श्री आर के चतर को पूर्व महासमिति ने निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किया और उनकी देखरेख मे दि ३०-१२ ८४ को निर्वाचन कार्य बडी कुशलता से सम्पन्न हुआ। कई वर्षों बाद यह प्रथम अवसर था जब सघ के मतदाताओ ने अपने मताधिकार का

प्रयोग कर २१ सदस्यों का निर्वाचन किया। बाद में ४ सदस्यों का सहवरण किया गया और फिर पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। वर्तमान मे २५ सदस्यों की यह नवनिर्वाचित महासमिति ही कार्य कर रही है जिसकी सूची संलग्न है।

वर्तमान चातुर्मास की स्वीकृति :

नई महासमिति ने अपना कार्यभार जनवरी ८५ के प्रथम सप्ताह में सम्भालने के तुरन्त बाद ही पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयकलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब का आगामी चातुर्मास जयपुर में करने हेतु उनसे विनती करने ४ सदस्यों का एक प्रतिनिधि मण्डल अध्यक्ष श्री शिखरचन्दजी पालावत के नेतृत्व में पिण्डवाड़ा भेजा। प्रतिनिधि मण्डल ने पूज्य आचार्य भगवन्त से जयपुर में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। इसके पश्चात् जयपुर संघ की एक यात्रा-बस संघ के अध्यक्ष के नेतृत्व में करेडा तीर्थ गई और वहां संघ की ओर से चातुर्मास करने हेतु पूज्य आचार्य भगवन्त को विनती पत्र पेश किया। इसके पश्चात् मालपुरा मन्दिर की प्रतिष्ठा पर संघ की एक बस वहा गई और चातुर्मास करने की आचार्य भगवन्त से पुनः जोरदार विनती की गई। अन्त मे आचार्य भगवंत ने प्रतिष्ठा के शुभ दिन संघ की वर्षो से चली आ रही विनती को मान देकर आगामी चातुर्मास जयपुर मे ही करने की मालपुरा में स्वीकृति प्रदान की और फिर जयपुर संघ की ओर से जय बुला दी गई। इसके बाद संघ के पदाधिकारी तथा आगेवान श्रावक मेड़ता रोड फलौदी तीर्थ गये जहां पूज्य आचार्य भगवन्त चैत्री ओलीजी की आराधना करा रहे थे और वहां पूज्य आचार्य भगवन्त की सहमति से वहां पधारी हुई आचार्य यशोदेवसूरि महाराज साहब के आज्ञानुवर्ति साध्वी श्री किरणलता श्रीजी ठाणा ५ से जयपुर मे ही चातुर्मास करने की विनती की गई। फिर उनके गुरुणीजी प्रवंतनी कुसम श्रीजी महाराज साहब की अहमदाबाद से स्वीकृति आने पर उनका भी चातुर्मास जयपुर में ही करने की जय उपाश्रय मंत्री श्री राजेन्द्रकुमार जी लूणावत व शिक्षा मंत्री श्री विमलकान्तजी देसाई ने अजमेर जाकर बुलाई। इस प्रकार इस वर्ष जयपुर श्री संघ को साधु-साध्वी दोनो का आचार्य भगवन्त की निश्रा में चातुर्मास करने का लाभ मिल रहा है जो संघ के प्रबल पुण्योदय का द्योतक है। साथ ही जयपुर संघ पूज्य आचार्य भगवन्त व सभी साधु-साध्वीगण का भी बहुत आभारी है जिन्होंने भीषण गर्मी मे लम्बी दूरी का बिहार कर जयपुर पधारने की कृपा की है।

चातुर्मास व्यवस्था :

पूज्य आचार्य भगवन्त एवं साधु-साध्वी महाराज साहब के चातुर्मास की व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन तथा बाहर से पधारने वाले साधर्मी बन्धुओं की भोजन एवं आवास की सुव्यवस्था करने हेतु महासमिति ने निम्न चार उपसमितियां बनाई:—

१. अर्थ संग्रह उप समिति
   संयोजक—श्री कपिलभाईजी शाह

२. भोजन व्यवस्था समिति
   संयोजक—श्री राकेशकुमारजी मोहनोत

३. आवास व्यवस्था समिति
   संयोजक— श्री अशोककुमारजी जैन

४. प्रचार प्रकाशन समिति
   संयोजक—श्री सुरेशकुमारजी मेहता

महासमिति उपरोक्त चारो संयोजको को उनके सफल कार्य संचालन के लिये हार्दिक धन्यवाद देती है। चातुर्मास के लिए समाज के सभी व्यक्तियो ने जो आर्थिक सहयोग दिया है उसके लिए भी महासमिति उन्हे धन्यवाद देती है और आशा करती है कि भविष्य मे भी इसी प्रकार का सहयोग उनसे मिलता रहेगा।

आचार्य भगवन्त का नगर प्रवेश

जयपुर नगर प्रवेश के पूर्व पूज्य आचार्य भगवन्त एव साधु साध्वीगण सोढाला मे श्रीमान् मोतीचन्दजी कोचर, आदर्श नगर मे श्रीमान् तरसेम कुमारजी जैन, हॉस्पीटल रोड पर श्रीमान् शिखर-चन्दजी पालावत के निवास स्थान पर उनके विशेष अनुरोध पर पधारे, जहा इन सभी ने पूज्य आचाय भगवन्त का प्रवचन कराकर गुरुभक्ति एव सघभक्ति का लाभ लिया।

पूज्य आचाय भगवन्त श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब, प्रसिद्ध प्रवचनकार मुनि श्री कलाप्रभ विजयजी महाराज साहब, मुनि श्री कल्पतरु विजयजी म सा, मुनि श्री कुमुदचन्द विजयजी म सा मुनि श्री मुक्तिचन्द्र विजयजी म सा मुनि श्री पूर्णचन्द्र विजयजी म सा, मुनि श्री मुनिचन्द्र विजयजी म सा, मुनि श्री विमलप्रभ विजयजी म सा, मुनि श्री अनलयश विजयजी म सा तथा साध्वी श्री किरणलता श्रीजी म सा, श्री रत्नत्रया श्रीजी म सा, श्री अमीवर्षा श्रीजी म सा, श्री दिव्य रक्षिता श्रीजी म सा, एव कल्पद्रुमा श्रीजी म सा का दिनाक २१ जून, १९८५ को राजस्थान चैम्बर के प्रागण मे सकल सघ की ओर से सामैया किया गया और फिर वहा से ही आपका नगर प्रवेश का भव्य एव विशाल जुलूस हाथी, घोडे, ऊँट बैण्डबाजे, नवयुवक मण्डल की भजन मण्डली और सैंकडो साधर्मी भाई बहिनो के साथ रवाना होकर नया दरवाजा, बापू बाजार, जौहरी बाजार होता हुआ तपागच्छ मन्दिर मे सामूहिक चैत्यवन्दन कर आत्मानन्द सभा भवन पहुँचा। मार्ग मे जगह-जगह २१ तोरण द्वार बने थे जहा सघ के श्रावक-श्राविकाओ ने गवँलिया करके आचाय भगवन्त की गुरु भक्ति की। सभा भवन पहुँचने पर आचाय महाराज के मगलाचरण के बाद श्री लक्ष्मीचन्दजी ममाली ने स्वागत गीत प्रस्तुत किया। इसके बाद सघ मत्री श्री नरेन्द्र-कुमार लूनावत, सघ के अध्यक्ष श्री शिखरचन्दजी पालावत, पूव अध्यक्ष श्री हीराभाई मण्डारवाला, पूव सघ मन्त्री श्री हीराचन्दजी वैद, श्री सुशील-कुमारजी छजलानी, उपाश्रय मन्त्री श्री राजेन्द्र-कुमारजी लूनावत, प्रचार प्रकाशन सयोजक सुरेश मेहता ने पूज्य आचाय भगवन्त एव साधु साध्वी महाराज साहब का सघ की ओर से अभिनन्दन किया तथा जयपुर मे चातुर्मास करने हेतु कृतज्ञता प्रगट की। तत्पश्चात् आचाय महाराज की गुरु पूजा एव कामली वोहराने का लाभ हजारो रुपयो की बोली लेकर श्रीमान् चापसी भाई प्राघोई (कच्छवाला) एव श्रीमान् तरसेमकुमारजी जैन ने लिया। इसके पश्चात् आचार्य भगवन्त व मुनि श्री कलाप्रभ विजयजी म सा का मागलिक प्रवचन हुआ। इस अवसर पर बाहर से भी काफी सख्या मे लोग पधारे।

अन्त में जयपुर श्री सघ तथा बम्बई के आराधक भाइयों की ओर से सघ पूजा की गई। पूज्य आचाय भगवन्त के प्रवेश के दिन श्री पार्श्व-नाथ पच कल्याणक पूजा श्री कल्याणमलजी कस्तूरमलजी शाह की ओर से पढाई गई तथा उसी दिन काफी भाई बहिनो ने आयम्बिल की तपस्या की जिसका लाभ अभयचन्दजी पालावत लखनऊ वालो ने लिया। जयपुर सघ को आचाय भगवन्त के आगमन के साथ ही साधर्मी भाई बहिनो की भक्ति का अपूव लाभ मिल रहा है। सघ की ओर मे बाहर से पधारने वाले साधर्मी भाई बहिनो के लिए सम्पूर्ण चातुर्मास काल मे श्रीमान् राजरूपजी टाक की धमशाला मे आवास का प्रबन्ध है तथा भोजन व्यवस्था का प्रबन्ध वद्धमान आयम्बिल शाला मे रखा गया है। महासमिति श्रीमान् राजरूपजी टाक को उनकी धमशाला उक्त काय हेतु देने के लिए हार्दिक धन्यवाद देती है।

चातुर्मासिक आराधनाए

पूज्य आचाय महाराज के प्रवेश के दिन से ही

सम्पूर्ण चातुर्मास काल में **अखण्ड अट्ठम** तप की क्रमवार आराधनाएं चल रही है। दिनांक १ जुलाई, १९८५ को पूज्य आचार्य भगवन्त को धर्मरत्न प्रकरण ग्रन्थ वोहराने का लाभ श्रीमान् रतनराजजी सिंघी ने तथा समराइच्च कथा ग्रन्थ बोहराने का लाभ श्रीमान् धर्मचन्दजी (मेसर्स कल्पवृक्ष वालों) ने लिया और उसी दिन से निरन्तर पूज्य आचार्य भगवन्त तथा प्रसिद्ध प्रवचनकार मुनि श्री कलाप्रभ विजयजी का उक्त दोनों ग्रंथों पर प्रातः ८.३० बजे से १०.०० बजे तक प्रभावशाली एवं ओजस्वी प्रवचन हो रहे हैं जिसे सुन लोग तप एवं त्याग की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

पूज्य आचार्य महाराज की प्रेरणा से तथा उनकी निश्रा में निम्न सामूहिक आराधनाएं अब तक हो चुकी हैं:—

१. **सामूहिक एकासना व आयम्बिल :** प्रति रविवार को विधि विधान सहित सामूहिक जाप एकासना तप के साथ हो रहे हैं जिसमें करीब ४०० से ५०० भाई बहिन भाग ले रहे हैं। उक्त एकासने कराने का लाभ अब तक श्रीमान् शिखरचन्दजी पालावत, पतनमलजी सरदारमलजी लूनावत, सेमराजजी पालरेचा, कपिलभाईजी शाह, पारसदासजी ढढ्ढा, एक सद्ग्रहस्थ तथा अभयचन्दजी पालावत लखनऊ वालों ने लिया है। इसके अलावा सामूहिक आयम्बिल तथा निवी तप की भी आराधना हुई है जिसके कराने का लाभ श्रीमान् हिम्मतलाल शाह खम्भात वाले, सुशीलकुमारजी छजलानी, बाबूभाई राजमलजी एवं श्री प्रेमचन्दजी विनोदकुमारजी जैन ने लिया है।

२. **बीस स्थानक तप :** तपागच्छ एवं खरतरगच्छ के ५०० भाई बहिनों ने दिनांक २८-७-८५ को एक दिन में ही बीस स्थानक तप की सामुदायिक आराधना एक दिन का उपवास विधि विधान व क्रिया के साथ कर एक अनुपम उदाहरण प्रेषित किया है। उसी दिन बीस स्थानक पूजा पढ़ाने का लाभ श्रीमान् पारसदासजी ढढ्ढा ने लिया तथा ५०० भाई बहिनों को पारना कराने का लाभ श्रीमान् जसवन्तमलजी सांड ने लिया। उक्त तप की अनुमोदना हेतु जयपुर श्री संघ के प्रयत्न से इस दिन राजस्थान सरकार ने भी पूरे जयपुर शहर में कत्लखाने एवं मांस वेचने की सभी दुकानें सामूहिक रूप से वन्द करने की आज्ञा जारी की, जिसके लिये राजस्थान सरकार बधाई की पात्र है। पूज्य आचार्य महाराज ने उसी दिन अपने प्रवचन मे साधर्मी भक्ति पर वहुत जोर दिया जिससे प्रेरित होकर लोगों ने अपने साधर्मी भाइयों की भक्ति के लिए हजारों रुपये उक्त कार्य हेतु अपनी ओर से लिखवाये।

३. **मोक्ष दण्डक तप तथा सामूहिक अठ्ठम तप की आराधना :** १० वहिनों ने ४० दिन का मोक्ष दण्डक तप किया तथा करीव एक सौ सामूहिक अठ्ठम की आराधना हुई। सामूहिक अठ्ठम तप वालों को धारणा तथा पारना कराने का लाभ श्रीमान् तरसेमकुमारजी जैन ने लिया। मोक्ष दण्डक तप की आराधना सम्पूर्ण होने तथा सामूहिक अठ्ठम के उपलक्ष में भगवान् की रथयात्रा का वरघोड़ा श्रीमान् पारसदासजी ढढ्ढा की ओर से निकाला गया।

यही नहीं पूज्य आचार्य महाराज की प्रेरणा से अव तक कई मासक्षमण, १७, १५, ११ उपवास, अनेकों अठ्ठाइयां तथा अठ्ठम, आदि की तपस्या भी हो चुकी है और उक्त क्रम अभी चालू है। अब पर्युषण पर्व के दिनों में कई भाई बहिनों ने पूज्य आचार्य भगवन्त की प्रेरणा से सामूहिक अठ्ठाइयां करने का निश्चय किया है जिसके धारणा कराने का लाभ श्रीमान् सरदारमलजी लूणावत तथा पारना कराने का लाभ श्रीमान् मोतीलालजी मानकचन्दजी, पारसमलजी वैद बीकानेर वालों ने लेने की इच्छा प्रकट की है।

आचार्य भगवन्त के नगर प्रवेश के दिन से अब तक विभिन्न साधर्मी बन्धुओ की ओर से करीबन ३० सघ पूजा एव प्रभावना हो चुकी है जो सघ के इतिहास मे एक रेकार्ड है ।

अन्त मे महा-समिति उन सभी साधर्मी बन्धुओ को धन्यवाद देती है जिन्होने आचार्य भगवन्त के पधारने के बाद विभिन्न कार्यों मे लाभ लेकर जयपुर सघ की शोभा बढाई है ।

पिछले चातुर्मास से अब तक की मुख्य उल्लेखनीय घटनाओं का विवरण देने के पश्चात् अब मैं इस सघ की स्थायी गतिविधियो का विवरण आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ —

(१) **श्री सुमतिनाथ जिन मन्दिर, घी वालों का रास्ता, जयपुर** करीबन २५८ वर्षीय प्राचीन जयपुर नगर के इस अत्यन्त एव भव्य जिनालय की व्यवस्था बहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न होती रही है । यहा की व्यवस्था एव मन्दिर के आकर्षण से प्रभावित होकर दर्शन एव पूजा करने वालो की सख्या भी प्रतिवर्ष बढती ही जा रही है । इस मन्दिर के मुख्य आकर्षण श्री सुमतिनाथ भगवान, श्री जयपुर मण्डन महावीर स्वामी की कायोत्सग प्रतिमा, श्री जयवर्धन पार्श्वनाथ भगवान एव अधिष्ठायक श्री मणिभद्रजी हैं । इस वर्ष इस खाते में रु ६६,२१० ३६ की आय एव रु ६४,६०३ ६७ का व्यय हुआ है । साथ ही पूजा द्रव्य की पृथक् से आय रु १३,७२७ ५६ व व्यय रु १३,५६७ ६६ हुआ है । इसके अलावा कुछ पूजा सामग्री भेंट स्वरूप भी प्राप्त होती है ।

इस वर्ष पिछले पर्युषण से अब तक इस मदिर के जीर्णोद्धार मे रु १४,३६७ ०२ का खर्चा हुआ है जिसमे मूल गभारे व मन्दिर मे काच व चित्रकारी का काम, गुम्बज पर आराईश एव चित्रकला दीर्घा मे रग रोगन आदि कराया गया है । साथ ही मन्दिरजी मे रग कलर व पेन्ट का काम भी कराया गया है । इसके अतिरिक्त सामूहिक स्नात्र महोत्सव का प्रतिदिन जो आयोजन प्रारम्भ किया गया था वह भी सुचारु रूप से चालू है । इस आयोजन मे भाग लेने वाले सभी भाई-बहिन धन्यवाद के पात्र हैं ।

२ **श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी मन्दिर, जनता कॉलोनी, जयपुर** इस जिनालय की सम्पूर्ण व्यवस्था भी वर्ष भर सुचारु रूप से चल रही है । साथ ही आराधको की सख्या भी दिन प्रतिदिन बढती जा रही है । मन्दिरजी की व्यवस्था आदि मे इस वर्ष कुल रु १,७२८ ८५ की आय एव ३,८०७ ०२ का व्यय हुआ है ।

इस वर्ष का वार्षिकोत्सव पूज्य आचार्य भगवत श्री कलापूर्ण सूरीश्वरजी म सा की सद्प्रेरणा से पर्युषण पर्व के बाद चैत्य परिपाटी के रूप मे मनाये जाने का निर्णय लिया गया है जिसकी सूचना आपको यथासमय दे दी जावेगी ।

इसी स्थान पर श्री सीमन्धर स्वामी जिनालय का जो निर्माण कार्य स २०३६ मे प्रारम्भ किया गया था शीघ्र ही पुन शुरू किया जाने वाला है । क्योकि बीच मे मकराना से मारबल का पत्थर समय पर प्राप्त न हो सकने एव सोमपुरा के न आ पाने से काय रुक गया था । अब नई महासमिति इस निर्माण काय को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कराने का प्रयास कर रही है तथा आगामी दिसम्बर मास मे अजनशलाका एव प्रतिष्ठा कराने की भावना रखती है । अब तक इस मन्दिर के निर्माण पर रु ३ ८७,३५६ ५५ का व्यय हो चुका है तथा आगे भी करीबन रु ६०,००० से ७०,००० आवश्यक निर्माण काय पर जिससे प्रतिष्ठा कराने की स्थिति आ सके खर्च होगा । साथ ही अजनशलाका एव प्रतिष्ठा महोत्सव के लिए भी करीबन ढेढ़ लाख रुपये के खर्च का अनुमान है । अत मैं महा-समिति की ओर से सघ के सभी भाई बहिनो से साग्रह विनती करता हूँ कि वे अधिकाधिक आर्थिक

सहयोग इस महान् कार्य हेतु उदारतापूर्वक प्रदान करने की कृपा करें। साथ ही जिन महानुभावों ने पूर्व में राशि आश्वस्त की थी उनसे भी निवेदन है कि वे शीघ्रातिशीघ्र राशि मन्दिरजी की पेढ़ी पर जमा करादें ताकि उक्त राशि से मन्दिर निर्माण एवं प्रतिष्ठा कार्य मे आर्थिक सहयोग मिल सके। वर्तमान मे श्री चिन्तामणिजी ढढ्ढा महासमिति द्वारा मनोनीत इस मन्दिर की उपसमिति के संयोजक हैं।

३. **श्री रिखबदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेड़ा** इस तीर्थ की व्यवस्था भी वर्ष भर सुन्दर रूप से सम्पन्न होती रही है। इस वर्ष इस तीर्थ की आय रु. १४,०६२.३२ एवं व्यय रु. १०,३५४.१२ हुआ। चैत बुदी ४ सं. २०४१ रविवार दिनांक १०–३–८५ को यहां का वार्षिकोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमें प्रातःकालीन पूजा सेवा के बाद सदैव की की भांति ऋषभदेव पंचकल्याणक पूजा पढ़ाई गई एवं १२ बजे से साधर्मी भक्ति का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस वर्ष यहां का मेला खर्च रु. ६,४१३.७५ हुआ जबकि चिट्ठे से आय रु. ८,७६२ हुई। इस प्रकार इस वर्ष इस मेले से रु. २,३४८.२५ की शुद्ध बचत हुई जो कि एक संतोषप्रद विषय है क्योंकि पिछले दो तीन वर्ष से इसमे टूट रहती थी। वर्तमान मे श्री राकेशकुमारजी मोहनोत महासमिति द्वारा मनोनीत इस मन्दिर की उपसमिति के संयोजक हैं।

४. **श्री शांतिनाथ स्वामी जिनालय, चंवलाई** इस जिनालय की व्यवस्था भी वर्ष भर सुन्दर रूप से सम्पन्न होती रही है। सम्वत २०३६ में जीर्णोद्धार एवं पुनः प्रतिष्ठा होने के बाद से यहां वार्षिकोत्सव पृथक् रूप से मनाया जाता है तदनुसार दिनांक १३–११–८४ को यहां का वार्षिकोत्सव मनाया गया। प्रातःकालीन पूजा सेवा के बाद पूजा पढ़ाई गई एवं साधर्मी भक्ति का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। श्री ज्ञानचन्दजी भण्डारी वर्तमान मे महासमिति द्वारा मनोनीत इस मन्दिर की उपसमिति के संयोजक हैं।

५. **श्री वर्धमान आयम्बिल शाला** : श्री वर्धमान आयम्बिल शाला का कार्य भी वर्ष भर सुचारु रूप से सम्पन्न होता रहा एवं इस सीगे में इस वर्ष रु. १६,५७८.१६ की आय एवं व्यय रु. २३,२१६.२० का हुआ। इस प्रकार इस सीगे मे रु. ६,६३८.०४ की टूट रही। टूट का प्रमुख कारण महंगाई में वृद्धि एवं एक मुश्त सहायता में कमी होना है। साथ ही स्थायी मिती खाते से इस वर्ष रु. ३,४६२ की आय हुई। जीर्णोद्धार के रूप में इस वर्ष आयम्बिल शाला की रसोई की जो फर्श काफी टूट-फूट गई थी उसे नई बनवा दी गई है तथा रंग रोशन व कलर पेन्ट आदि भी कराया गया है जिस पर रु. २,७३० का व्यय हुआ है।

यहां पर जो फोटो लगाने की योजना है उसके अन्तर्गत इस वर्ष रु. ८,०२८ की राशि प्राप्त हुई। इस प्रकार जो शेड निर्माण पर राशि व्यय की गई थी उसकी काफी रकम प्राप्त हो चुकी है परन्तु आप सबसे जितना सहयोग मिला है उससे और भी अधिक सहयोग की अपेक्षा है ताकि इस सीगे की टूट पूरी हो सके। अतः आप सभी से आयंबिल शाला हेतु उदारतापूर्वक आर्थिक सहयोग की विनती है। यह आर्थिक सहयोग आप अपने फोटो लगवाकर, स्थायी मिती लिखवाकर या एक मुश्त आर्थिक सहायता प्रदान कर दे सकते हैं। आसोज एवं चैत्र मास की ओलीजी की आराधना यथावत श्री चिमनभाई शाह बम्बई वालों की ओर से सम्पन्न हुई।

६. **आत्मानन्द सभाभवन (उपाश्रय)** : इस वर्ष इस सभा भवन एवं नीचे के उपाश्रय का पूर्ण रूप से रंग रोगन कलर, पेन्ट व मरम्मत वगैरह का काम कराया गया। साथ ही कुछ मरम्मत व रंग सफेदी का काम भागरे वाले मन्दिर के सामने उपाश्रय में भी कराया गया जिस पर कुल रु.

१५,६४३ ७० का व्यय हुआ। साथ ही इस वष पिछले चातुर्मास से लेकर इस चातुर्मास तक निम्न-लिखित साधु साध्वीजी महाराज साहब यहा पधारे जिनकी वैयावच्च, भक्ति एव विहार की व्यवस्था का लाभ इस सघ को मिला—

१ साध्वी श्री प्रियधर्मा श्रीजी म सा ठाणा ३
२ मुनि श्री विशुद्धविजयजी म सा ठाणा १
३ साध्वी श्री प्रियदशना श्रीजी म सा ठाणा २
४ साध्वी श्री देवसेना श्रीजी म सा ठाणा ५
५ मुनि श्री विमलविजयजी म सा ठाणा २
६ साध्वी श्री चारुव्रता श्रीजी म सा ठाणा ३

७ साधारण खाता इस खाते मे मुख्य रूप से व्यय के मद साधु-साध्वियो की वैयावच्च व विहार व्यवस्था, मणिभद्र स्मारिका प्रकाशन, साधर्मी भक्ति, उद्योग शाला एव कमचारियो का वेतन आदि है। इस वष इस खाते मे रु ७२,३९४ ९२ की आय एव रु ४६,०३७ ९१ का व्यय हुआ। इस प्रकार इस खाते म इस वष रु २३,३५७ ०१ की बचत रही। इस खाते मे इस वष मणिभद्र उपकरण भण्डार से रु ७,००० की भेंट भी प्राप्त हुई है। इस प्रकार यह खाता इस वर्ष भी टूट से मुक्त रहा जो एक सतोष का विषय है।

इस खाते के अन्तगत इस सस्था द्वारा सचा-लित उद्योग शाला भी सुचारु रूप से चल रही है साथ ही साधर्मी भक्ति व सहायता का कायक्रम भी पूववत चल रहा है जिसके अन्तगत समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वग को मासिक सहायता व आकस्मिक सहायता भरण पोषण, चिकित्सा एव शिक्षा हेतु दी जाती है। इस वर्ष साधर्मी भक्ति एव सहायता पर कुल रु ६,५८२ २० का व्यय हुआ एव आय रु ४,९९५ ४४ हुई।

चू कि इस वष इस खाते म काफी खर्चा होने की सम्भावना है अत आप सभी से निवेदन है कि इस खाते मे उदारतापूर्वक आर्थिक सहयोग प्रदान करें।

८ साधर्मी भक्ति कोष की स्थापना साधर्मी भक्ति कायक्रम के अन्तर्गत परम पूज्य आचाय भगवन्त श्रीमद् विजयवल्लभपूरण सूरीश्वरजी म सा की प्रेरणा से श्वेताम्बर समाज के ऐसे सद्गृहस्थो, जिनको सहायता व सहयोग की अपेक्षा है, के लिए समाज के सहयोग से इस वष एक साधर्मिक भक्ति कोष बनाया गया है। इसमे करीबन रु ७५,००० का चिट्ठा हो चुका है, जिसमे से करीबन रु २२,००० प्राप्त भी हो चुके हैं। इस कोष से इस साधर्मी भक्ति कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली बनाया जायेगा।

इस काय की व्यवस्था हेतु आचार्य म सा के निर्देशानुसार इस सघ के अन्तर्गत एक उपसमिति का गठन भी किया जा चुका है जिसके निम्नलिखित सदस्य हैं—

१ श्री शिखरचदजी पालावत
२ श्री कपिलभाई के शाह
३ श्री नरेन्द्रकुमार लूणावत
४ श्री राजेद्रकुमारजी लूणावत
५ श्री हीराचदजी वैद
६ श्री दूलीचन्दजी टाक
७ श्री तरसेमकुमारजी जैन

आप सभी से इस कार्य मे अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग देने की साग्रह विनती है।

९ ज्ञान खाता (पुस्तकालय, वाचनालय, ज्ञान भडार एव धार्मिक पाठशाला) इस वष इस मद के अन्तर्गत कुल आय रु १२ ६२४ ९८ व कुल व्यय रु २ १४२ ०९ का हुआ। पुस्तकालय हेतु कुछ ग्रन्थ व पुस्तकें करीवन रु २,००० की क्रय की गई। साथ ही दनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाए एव बालोपयोगी साहित्य भी मगाया जाता है जिसका अधिक से अधिक उपयोग समाज

के सदस्यों द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त संघ द्वारा संचालित धार्मिक पाठशाला भी नियमित रूप से चल रही है। धार्मिक पाठशाला की अधिक से अधिक उपयोगिता हो, इसके लिए बालक अधिक से अधिक धार्मिक पाठशाला मे आवें ऐसी महासमिति की भावना है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ भण्डार की पुस्तकों पर कवर व जिल्द आदि भी चढ़वाई गई है।

१०. **विश्व कल्याण प्रकाशन :** इस वर्ष की विशेष उपलब्धि के रूप मे आपको यह सूचित करता हूँ कि पिछले ६ वर्षों से बन्द विश्व कल्याण प्रकाशन संस्था का कार्यालय एवं सामान, जिसमे करीब ५ स्टील आलमारियां व काफी संख्या मे ब्लाक्स व पुस्तकें आदि है जयपुर तपागच्छ संघ को पंन्यास श्री भद्रगुप्त विजयजी म. सा. एवं श्री रणजीतसिंहजी भंडारी व पारसमलजी कटारिया के सहयोग से प्राप्त हो गया है। इसके लिए जयपुर तपागच्छ संघ पंन्यास भद्रगुप्त विजयजी म. सा. के प्रति कृतज्ञ है। साथ ही इसके लिए मैं महासमिति की ओर से श्री रणजीतसिंहजी भंडारी एवं पारसमलजी कटारिया को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

११. **आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल :** श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल का कार्य भी वर्ष भर सराहनीय रहा। वर्तमान मे इसके अध्यक्ष श्री शीतल शाह एवं मन्त्री श्री अशोक जैन हैं। विगत चातुर्मास से लेकर अब तक के सम्पन्न हुए सभी कार्यक्रमों विशेषकर मेलों की व्यवस्था, एकासना तप की व्यवस्था एवं विभिन्न समारोहों आदि में इनका कार्य प्रशंसनीय रहा जिसके लिए मण्डल के सभी सदस्य हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

१२. **मणिभद्र स्मारिका :** इस संस्था के मुख पत्र 'मणिभद्र स्मारिका' के २६वें अंक का प्रकाशन भी पूर्ववत सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुआ। २६वें अंक के प्रकाशन में रु. ८,००२.७० का व्यय हुआ जबकि विज्ञापन आदि से आय रु. ९.३३३ हुई इस प्रकार इस स्मारिका पर करीबन रु. १,३०० की बचत हुई। इस वर्ष भी २७वां अंक आपकी सेवा में प्रेषित है एवं इसे पूर्व अंकों से भी सुन्दर, आकर्षक एवं पठनीय बनाया गया है। पत्र प्रकाशन मे सम्पादक मण्डल द्वारा किये गये अथक परिश्रम, लेखकों व विज्ञापनदाताओं के सहयोग के लिए महासमिति आभार व्यक्त करता है एवं भविष्य में भी सहयोग की अपेक्षा रखती है।

१३. **वार्षिक आर्थिक स्थिति :** वर्तमान मे संस्था की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ है। जनता कॉलोनी मन्दिर के निर्माण कार्य का व्यय होने के बावजूद भी संस्था के समस्त कार्य आवश्यकतानुसार सम्पन्न होते रहे हैं। इस वर्ष की कुल आय रु. २,७०,४५६.६२ हुई जबकि कुल व्यय रु. २,१७,३५४.९७ का हुआ। इस प्रकार इस वर्ष में शुद्ध बचत ५३,१०१.६५ हुई। इसके अतिरिक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार व उपाश्रय आदि के रंग रोगन आदि पर भी इस वर्ष करीबन रु. ३०,०४० ७२ का खर्चा हुआ है। साथ ही आश्वस्त राशियों मे से भी काफी बाकी है। अतः समस्त दानदाताओं से आश्वस्त राशि का जल्दी से जल्दी भुगतान करने की आग्रह भरी विनती है।

१४. **अंकेक्षक :** नव निर्वाचित महासमिति संघ के अंकेक्षक श्री राजेन्द्रकुमारजी चत्तर C.A. के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती है जिन्होंने दिसम्बर १९८४ मे इस संस्था की नई महासमिति के निर्वाचन कार्य को बहुत ही सुन्दर ढंग से सम्पन्न कराया। इसके अतिरिक्त आपने इस संस्था के हिसाब-किताब आदि का आडिट व इन्कम टैक्स सम्बन्धी कार्य भी निःस्वार्थ भाव से किया जिसके लिए महासमिति उनको धन्यवाद प्रेषित करती है। इस वर्ष भी आय व्यय विवरणिका भी आयकर विभाग मे प्रस्तुत की जा चुकी है तथा उनके द्वारा

प्राप्त ग्राडिट रिपोट एव ग्राय व्यय विवरण मूल रूप से प्रकाशित किया जा रहा है।

१५ कर्मचारी वर्ग इस सघ के अधीन समस्त कर्मचारी वग का काय भी वर्ष भर सतोषप्रद रहा और उन्ही के सहयोग से सभी गतिविधिया सुचारु रूप से सम्पन्न होती रही है। साथ ही महासमिति भी उनकी सेवाओ एव कठिनाइया दोनो के प्रति सजग रही है और पिछले वर्षों की भाति इस वर्ष भी उनके वेतनो मे वृद्धि की गई है तथा इनाम आदि देकर उन्हें आर्थिक लाभ पहुँचाया गया है। कर्मचारी वर्ग का जो सहयोग हमे मिला है उसके लिए हम कर्मचारी वग को भी धन्यवाद देते हैं।

१६ पिछली महासमिति को धन्यवाद वर्तमान नव निर्वाचित महासमिति पूव महासमिति के सभी पदाधिकारियों एव सदस्यो को भी अपना धन्यवाद प्रेषित करती है जिन्होंने पिछले तीन वर्ष तक इस सस्था की सेवा कर इस सस्था के हित मे काय किया। साथ ही सघ के सभी मतदाताओ को भी धन्यवाद देती है जिन्होंने इस सस्था के चुनाव मे सहयोग देकर नये कार्यकर्ताओ को आगे लाने मे सहयोग दिया। नई महासमिति का कार्यकलाप सब आपके समक्ष है एव हमने अपनी ओर से अच्छे से अच्छा कार्य करने की भरसक कोशिश की है फिर भी कोई जाने अनजाने मे भूल हुई हो तो महासमिति उसके लिए क्षमा प्रार्थी है।

अन्त मे इस वर्ष के सफल कार्य सचालन मे प्राप्त सहयोग के लिए यह महासमिति समस्त श्री सघ के प्रति अपना धन्यवाद व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त गोपीचन्दजी चोरडिया को ध्वनि-प्रसारण यन्त्र की व्यवस्था एव जैन नवयुवक मण्डल को महावीर जन्म वाचना दिवस पर प्रस्तुत कायक्रम हेतु विशेष रूप से धन्यवाद प्रेषित करती है। साथ ही श्री कटारीया तीर्थ के भ० महावीर स्वामी की फोटो उपलब्ध कराने हेतु श्री L M POMAL अहमदाबाद वालो को भी धन्यवाद देती है। इन्ही शब्दो के साथ मैं सन् १९८४-८५ का यह वार्षिक विवरण व आय व्यय का लेखा प्रमुख घटनाओ सहित आपकी सेवा मे सादर प्रस्तुत कर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

जय मणिभद्र!

जब मानव दूसरो की ओर एक अगुली करता है, तब तीन अगुलिया सहज ही उस मानव की ओर हो जाती हैं। वे मानव को सचेत करती हैं कि हे मानव! अगर तू किसी का एक दोष देखता है तो तुझमे उससे तीन गुणा दोष विद्यमान है। पहले उनका सुधार कर।

आडिटर्स-रिपोर्ट

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ,
घी वालों का रास्ता,
जयपुर

<u>विषय—दिनांक 31-3-85 को समाप्त होने वाले वर्ष का अंकेक्षण प्रतिवेदन ।</u>

(1) हमें वे सभी सूचनाएँ व स्पष्टीकरण प्राप्त हुए हैं, जिनकी हमें अंकेक्षण हेतु हमारी जानकारी के लिये आवश्यकता थी ।

(2) संस्था का चिट्ठा व आय-व्यय खाता जिनका उल्लेख हमने हमारी रिपोर्ट में किया है, लेखा पुस्तकों के अनुरूप है ।

(3) हमारी राय में, जैसा कि संस्था की पुस्तकों से प्रकट होता है, संस्था ने आवश्यक पुस्तक रखी है ।

(4) हमारी राय मे "प्राप्त सूचनाओं एवं स्पष्टीकरण के आधार पर" बनाया गया चिट्ठा व आय-व्यय का हिसाब सच्चा व उचित चित्र प्रस्तुत करता है ।

वास्ते—चत्तर एण्ड कम्पनी
जौहरी बाजार, जयपुर
दि०

चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स
R. K. Chatter (C.A.)
Prop.
For Chatter and Company

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घीवालो का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

आय व्यय खाता

(दिनांक १ ४ ८४ से ३१-३-८५ तक)

गत वर्ष की रकम	व्यय	चालू वर्ष की रकम		गत वर्ष की रकम	आय	चालू वर्ष की रकम	
५६,९२१ ४३	श्री मन्दिर खाते नामे			९७,६६३ ८३	श्री मन्दिर खाते जमा		
	श्री आवश्यक खर्च	३८,९७५ ३८			भेंट खाता	६६,६१३ ९९	
	श्री विशेष खर्च	२५,९२८ ५९	६४,९०३ ९७		पूजन खाता	१३,७२७ ५६	
					किराया खाता	७२० ००	
					ब्याज खाता	१३,६५५ ५१	
					श्री चदलाई मन्दिर	८७२ ३५	
					श्री जोत	६२० ९५	९६,२१० ३६
२,५७९ ००	श्री मणिभद्र भण्डार खाते नामे		४,२५५ ६०	१२,७२६ ३४	श्री मणिभद्र भण्डार खाते जमा		११,०६४ ५४
५१,६२१ १८	श्री साधारण खाते नामे			५६,१९३ २८	श्री साधारण खाते जमा		
	श्री आवश्यक खर्च	३६,५८१ ५८			भेंट खाता	४४,६६५ १६	
	श्री विशेष खर्च	१२,४५६ ३३	४९,०३७ ९१		साधर्मिक भक्ति	४,९९५ ४४	
					श्री वयाच्च खाता	९० ००	
					श्री किराया खाता	४,७९२ ००	
					श्री मणिभद्र प्रकाशन	९,३३३ ००	
					श्री उद्योग शाला	७३० ००	
					श्री ब्याज खाता	७,७८६ ३२	
					श्री चदलाई	३ ००	७२,३९४ ९२

गत वर्ष	विवरण		
३,१२०.३६	श्री ज्ञान खाते नामे		
	श्री आवश्यक खर्च	१,५९५.०४	
	श्री विशेष खर्च	५४७.०५	२,१४२.०९
१८,१६३.२६	श्री आयम्बिल खाते जमा		
	श्री आवश्यक खर्च	२३,२१६.२०	
	श्री विशेष खर्च		२३,२१६.२०
१६३.००	श्री जीवदया खाते नामे		३,६६६.००
	श्री गुरुदेव खाते नामे		४६.००
	श्री शासन देवी खाते नामे		२०५.२५
३,८०५.०१	श्री जनता कॉलोनी खाते नामे		३,८०७.०२
१,८६,०८३.३०	श्री जनता कॉलोनी निर्माण खाते नामे		६५,२५६.४३
१,३०७.७५	श्री आयम्बिल जीर्णोद्धार खाते नामे		८१५.५०
	श्री सात क्षेत्र खाते नामे		
	श्री बचत सामान्य कोष में हस्तान्तरित		५३,१०१.६५
३,२८,७६८.२६	कुल योग		२,७०,४५६.६२

गत वर्ष	विवरण		
१०,६९४.८१	श्री ज्ञान खाते जमा		
	श्री भेंट खाता	११,४११.७४	
	श्री ब्याज	१,२१३.२४	१२,६२४.९८
१६,४०२.८४	श्री आयम्बिल खाते जमा		
	भेंट खाता	११,६१४.८६	
	ब्याज खाता	२,२४७.५५	
	श्री किराया खाता	२,७१५.७२	१६,५७८.१६
७१५.१८	श्री जीवदया खाते जमा		५,१००.९८
१,१०१.०८	श्री गुरुदेव खाते जमा		१,८८६.८१
९६०.०६	श्री शासन देवी खाते जमा		६३०.४२
५,२७०.८५	श्री जनता कॉलोनी खाते जमा		१,७२८.८५
१,०६,७२३.९६	श्री जनता कॉलोनी निर्माण खाते जमा		४०,८६०.००
६,१३९.००	श्री आयम्बिल जीर्णोद्धार खाते जमा		८,०२८.००
८५.१२	श्री सात क्षेत्र खाते जमा		४८.६०
७,७६१.६४	शुद्ध हानि सामान्य कोष से हस्तान्तरित (गत वर्ष की)		
३,२८,७६८.२९	कुल योग		२,७०,४५६.६२

शिखरचन्द पालावत	मोतीलाल कटारिया	पुष्पमल लोढा	वास्ते : चतर एण्ड कम्पनी
प्रधान	अर्थ मंत्री	हिसाब निरीक्षक	चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट
			आर. के. चतर
			८५६४

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घीवालों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

चिट्ठा

(दिनांक १-४-८४ से ३१-३-८५ तक)

गत वर्ष की रकम	दायित्व		चालू वर्ष की रकम
२,६५,८५६ ७१	सामान्य कोष		
	पिछला शेष	२,४५,८५७ ८१	
	बढाई गई इस वर्ष का लाभ	५३,१०१ ६५	२,९८,९५९ ४६
७१,०१८ ००	स्थायी मिती आयम्बिल शाला		
	पिछला शेष	७१,०१८ ००	
	जोडी गई इस वर्ष की रकम	३,४६२ ००	७४,४८० ००
२,२६५ ००	स्थायी मिती कोष जोत		
	पिछला शेष	२,२६५ ००	
	जोडी गई इस वर्ष की रकम	१५१ ००	२,४१६ ००
१०,४२९ २५	श्री बरखेड़ा तीर्थ		
	इस वर्ष की रकम		१४,०९२ ३२
१,८६० ००	श्री सम्वत्सरी पारना कोष		१,८६० ००
३ ८४४ ३०	श्री नवपदजी पारना		३,८४४ ३०

गत वर्ष की रकम	सम्पत्तियाँ		चालू वर्ष की रकम
२६,७४८ ४५	श्री स्थायी सम्पत्ति		
	जायदाद (दुकान)		२६,७४८ ४५
२,४७४ ५०	श्री विभिन्न देनदारियाँ		
	श्री उगाई खाता	२,४७४ ५०	
१०,४०० ००	श्री अग्रिम खाता	१०,१०० ००	
७२७ ००	श्री राजस्थान स्टेट		
	इलेक्ट्री सिटी बोर्ड	७२७ ००	
४९९ ००	श्री भण्डार खाता	४९९.००	
१,५७२ २५	श्री श्राविका संघ खाता	७८८ ४०	१४,५८८ ९०
१८,४९८ ७२	श्री बरखेड़ा खाता		
	पिछला बाकी	८,०६९ ४७	
	इस वर्ष का खर्च	१०,३५४ १२	१८,४२३ ५९
	श्री बैंको में व रोकड़ बाकी		
२,१०,९१४ ००	(क) स्थायी जमा खाता		

गत वर्ष	विवरण		
२१,४६३.३५	श्री श्राविका संघ खाता		
	पिछला शेष	१९,८६१.१०	
	जोड़ी गई इस वर्ष की रकम	१,६००.००	२१,४६१.१०
२,५००.००	श्री ग्राम स्थायी कोष		२,५००.००
६७८.६४	श्री रमेशचन्दजी भाटिया		६७८.६४
१.२०	श्री फरक खाता		
३,५६,९१६.६५	कुल योग		४,२०,२९२.१२

गत वर्ष	विवरण		
	१. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, जौहरी बाजार	१,७१,६०६.१०	
	२. बैंक ऑफ बड़ौदा, जौहरी बाजार	५६,४००.००	
	३. देना बैंक, एम. आई. रोड	२६,३९२.५०	२,५४,३९८.६०
	(ख) चालू खाता		
६३५.०४	स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर,		६३५.०४
७१,३०७.१४	(ग) बचत खाता		
	१. बैंक ऑफ बड़ौदा	१,०७१.२९	
	२. बैंक ऑफ राजस्थान	२,१०२.००	
	३. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर	८५,६३३.१६	८८,८०६.४५
१६,१४०.५५	(घ) रोकड़ शेष		१६,३९१.०९
३,५६,९१६.६५	कुल योग		४,२०,२९२.१२

शिखरचन्द पालावत
अध्यक्ष

मोतीलाल कटारिया
अर्थ मंत्री

पुष्पमल लोढा
हिसाब निरीक्षक

वास्ते : चतर एण्ड कम्पनी
चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट
आर. के. चतर
८५४४

।। श्री सीमंधर स्वामिने नमः ।।

।। श्री जीत हीर कनक देवेन्द्र कंचन कलापूर्णसूरि गुरुभ्यो नमः ।।

श्री जयपुर–जनता कालोनी मध्ये श्री मूलनायक श्री सीमंधर स्वामी आदि प्रभु का

भव्यातिभव्य

श्री अंजनशलाका प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव

महोत्सव प्रारम्भ	: मागशर वदि ५ (गुजराती कारतक वद ५) दिनांक १–१२–८५ रविवार
अंजनशलाका शुभ दिन	: मागशर वदि ११ (गुजराती कारतक वद ११) दिनांक ८–१२–८५ रविवार
प्रतिष्ठा शुभ दिन	: मागशर वदि १३ (गुजराती कारतक वद १३) दिनांक ९–१२–८५ सोमवार
शुभनिश्रा	: अध्यात्म योगी पू० आ०

श्री विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी म.सा.
आदि सपरिवार।

उपरोक्त प्रसंग पर यदि किसी महानुभाव या श्री संघ को प्रतिमाजी की अंजन-शलाका करानी हो, उनको कारतक सुदि १० दिनांक २१–११–८५ गुरुवार तक प्रतिमाजी भेज देने की नम्र विनंति है।

प्रतिमाजी भेजने के लिए एवं पत्र व्यवहार करने के लिए पता :—

श्री अंजनशलाका महोत्सव समिति
आत्मानन्द जैन सभा भवन,
जौहरी बाजार, घी वालों का रास्ता,
जयपुर [illegible]
[illegible]

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ
संघ का
जय जिनेन्द्र
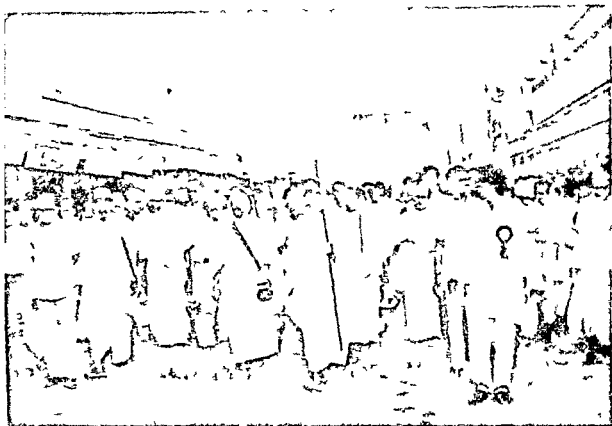
अध्यात्म योगी पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजयकलापूर्ण सूरीश्वरजी महाराज साहब का मुनिमण्डल सहित—

नगर प्रवेश
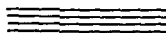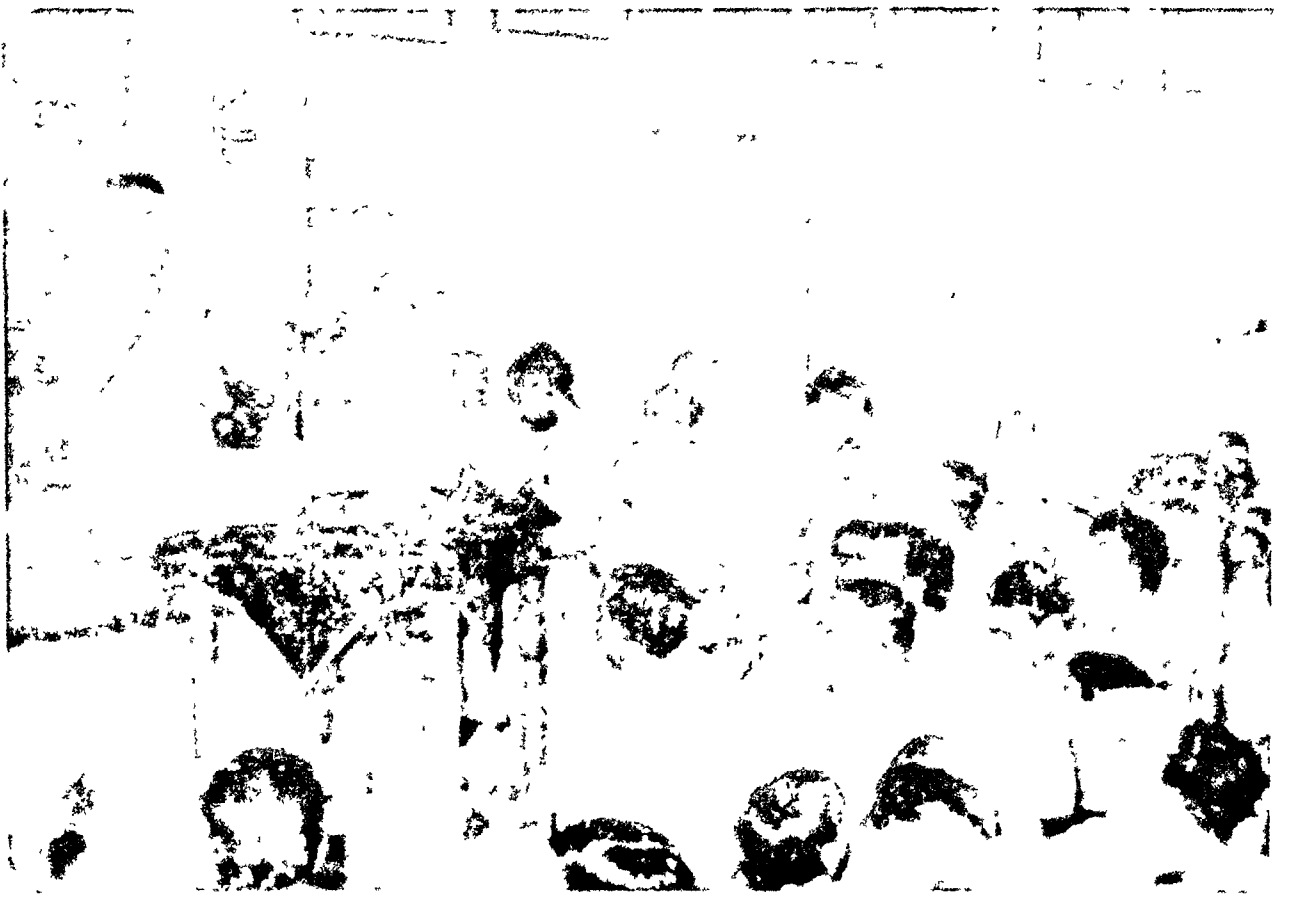
आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयकलापूर्ण जी महाराज एवं
प्रवचनकार मुनि कलाप्रभ विजय महाराज साहब द्वारा
ओजस्वी प्रवचन

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ

नव-निर्वाचित कार्यकारिणी
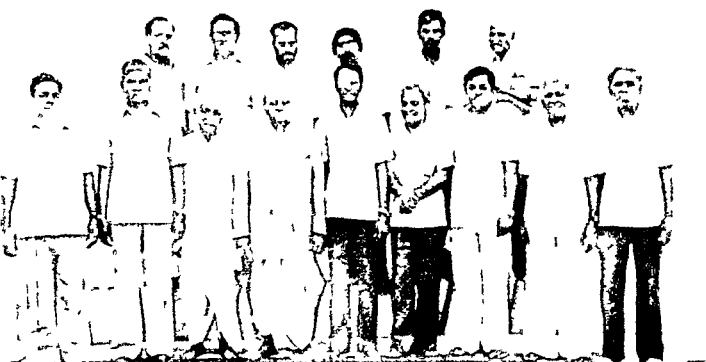
प्रथम पक्ति म खडे हुए — आयम्बिलशाला मत्री—श्री मोतीचन्दजी चोरडिया, अथ मत्री—मोतीलाल कटारिया, उपाध्यक्ष—कपिलभाई शाह, अध्यक्ष—शिखरचन्द पालावत, सघ मत्री—श्री नरेन्द्रकुमार लुणावत, उपाश्रय मत्री—राजेन्द्रकुमार लुणावत, लक्ष्मीचन्द भसाली, हिसाब निरीक्षक—पुष्पमल लोढा ।

द्वितीय पक्ति म खडे हुए — कार्यकारिणी सदस्य—श्री विमलकुमार लुणावत, श्री विजयराज जी लल्लूजी मन्दिर मत्री—श्री नरेन्द्रकुमार कोचर, गुणवन्तमल साड, रतनराज सिघवी । राकेशकुमार मोहनोत

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व

की

शुभ कामनाएं

—: स्थान प्रदत्त :—

एक सद्गृहस्थ की ओर से

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व पर

शुभ कामनाएं :

दूसरे के दोषों को क्षमा-प्रदान करें—माफ करें।
क्योंकि अपने दोष भी दूसरे माफ करते है।

कान्ती भाई गांगजी भाई देढिया

(मनफरा–कच्छ वाले)

C/13, पारसवाना बिल्डिंग, ताड़देव

बम्बई-34

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व की शुभकामनाओं

सहित

मणिभद्र उपकरण भंडार

घी वालो का रास्ता, जयपुर–302 003

प्रभु पूजन की समस्त प्रकार की सामग्री

एवम्

आराधना हेतु वांछित उपकरण आदि

मिलने का विश्वसनीय स्थान